अनुभवसूत्रं
वातुलशुद्धाख्यतन्त्रञ्च

श्रीमन्मायिदेवविरचितम्

सर्वदर्शनाचार्यश्रीकृष्णानन्दसागरः

वाराणसी

अनुभवसूत्रं वातुलशुद्धाख्यतन्त्रञ्च

अनुभवसूत्रं वातुलशुद्धाख्यतन्त्रं च

ANUBHAVASŪTRA

VĀTULAŚUDDHĀKHYATANTKA

Shri Madhavanand Granthmala's Fourth Pushpa–

ANUBHAVASUTRAM

and

VĀTULAŚUDDHĀKHYATANTRAM

ŚRĪMANMĀYIDEVA

PRATYABHIJÑĀ-PRAKĀŚANA
VARANASI

श्रीमाधवानन्दग्रन्थमालायाः चतुर्थं पुष्पम्–

श्रीमन्मायिदेवविरचितम्

अनुभवसूत्रं
वातुलशुद्धाख्यतन्त्रं च

सर्वदर्शनाचार्यश्रीकृष्णानन्दसागरेण

भूमिकया सह सम्पाद्य

प्रकाशितम्

प्रत्यभिज्ञा-प्रकाशन

वाराणसी

Shri Madhavanand Granthmala's Fourth Pushpa–

ANUBHAVASUTRAM

and

VĀTULAŚUDDHĀKHYATANTRAM

ŚRĪMANMĀYIDEVA

PRATYABHIJÑĀ-PRAKĀŚANA
VARANASI

श्रीमाधवानन्दग्रन्थमालायाः चतुर्थं पुष्पम्-

श्रीमन्मायिदेवविरचितम्

अनुभवसूत्रं
वातुलशुद्धाख्यतन्त्रं च

सर्वदर्शनाचार्यश्रीकृष्णानन्दसागरेण
भूमिकया सह सम्पाद्य
प्रकाशितम्

प्रत्यभिज्ञा-प्रकाशन
वाराणसी

Publisher :
© Pratyabhijñā-Prakāśana
For Ācārya Kṛṣṇānanda Sāgara
D. 38/135, Bans Phatak
Varanasi-221 001

Pratyabijñā-Prakāśana
First edition : 1987
Price Rs. 40-00

Printed by :
JYOTI PRESS
Madhyameshwar
Varanasi-221 001

भूमिका

अनुभवसूत्रम्—

'अनुभवसूत्रम्' नामक यह ग्रन्थरत्न महात्मा मायिदेव की रचना है। यह ग्रन्थ शिवोक्त 'वातुल-महातन्त्र' के उत्तरार्ध के रूप में लिखा गया है। यह आठ अधिकरणों में विभक्त है और 'शिव-सिद्धान्ततन्त्र' के नाम से जाना जाता है।

इसका प्रथम अधिकरण 'पारम्पर्यक्रम' के नाम से, द्वितीय अधिकरण 'स्थलनिर्देश' के नाम से, तृतीय अधिकरण 'लिङ्गस्थलनिरूपण' के नाम से, चतुर्थ अधिकरण 'अङ्गस्थलनिरूपण' के नाम से, पञ्चम अधिकरण 'लिङ्गाङ्ग-संयोगविधि' के नाम से, षष्ठ अधिकरण 'सर्वाङ्गलिङ्गसाहित्य' के नाम से, सप्तम अधिकरण 'श्रीलिङ्गार्पणसद्भाव' के नाम से प्रयुक्त हुआ है।

प्रथम अधिकरण में ऐपुरी में सोमनाथ की कृपा से साक्षात् विष्णु के अवतार-स्वरूप आदि गुरु उपमन्यु से लेकर प्रस्तुत ग्रन्थकार मायिदेव पर्यन्त आचार्यों की परम्परा का क्रमशः वर्णन है।

द्वितीय अधिकरण में सच्चिदानन्ददेव के लक्षण से युक्त परब्रह्म-स्वरूप तथा विश्व के स्थिति और लय के आधारभूत शिवतत्त्व के 'स्थलत्व' का प्रतिपादन किया गया है और शिव को लिङ्गस्थल एवं जीव को अङ्गस्थल बताते हुए उन दोनों स्थलों के ऐक्य से अज्ञान की ग्रन्थी खुलने पर जीव को शिवतत्त्व की प्राप्ति कही गई है।

तृतीय अधिकरण में पहले चर और अचर सम्पूर्ण जगत् के लय का आश्रय होने से शिव के 'लिङ्गत्व' का निरूपण हुआ है। तत्पश्चात् भाव,

प्राण और इष्ट के रूप में तीन प्रकार के उस लिङ्ग का बिन्दु, नाद और कला के भेद से छः प्रकार का होना बताया गया है। इसके साथ चित्, परा, आदि, इच्छा, ज्ञान और क्रिया के नाम से छः प्रकार की शक्तियों का वर्णन किया गया है। अंत में शक्तियों से युक्त स्थलों के स्वरूपलक्षण का निरूपण करते हुए विशश और विस्तृत लिङ्गज्ञान से ज्ञाता के शिवत्व की उपलब्धि बताई गई है।

चतुर्थ अधिकरण में अङ्गस्थल के ज्ञान से शिवाद्वैत की उपलब्धि प्रतिपादित हुई है। यहाँ 'अं = परं ब्रह्म प्रति, ग = गच्छतीति' इस प्रकार की व्युत्पत्ति करते हुए जीव को अंग कहा गया हैं और योग, भोग तथा त्याग के द्वैविध्य से उस जीव का छः भेद बताया गया है। अंत से समरसा, आनन्दाकारा, अनुभवाकारा, परमा, अवधानात्मिका और नैष्ठिकी इन छः प्रकार की भक्तियों को दर्शा कर उन भक्तियों से युक्त जीव की शिवोपलब्धि दिखाई गई है।

पञ्चम अधिकरण में शिवात्मक लिङ्ग और जीवात्मक अङ्ग के सम्यक् योगमार्ग से संयोग तथा संयोग की विधि, का वर्णन है। लिङ्ग और अङ्ग और अङ्ग के ये संयोग इस अधिकरण में अनेक प्रकार से निरूपित हैं। जैसे 'तत्त्वमसि' इस वाक्य में 'तत्' का पदार्थ लिङ्ग है, 'त्वं' का पदार्थ अङ्ग है और 'असि' पद का अर्थ संयोग है; सच्चिदानन्द में 'सत्' लिङ्ग है, 'चित्' अङ्ग है और 'आनन्द' उन दोनों का संयोग है। इसी प्रकार नाद लिङ्ग है, बिन्दु अङ्ग है और कला संयोग है। मन्त्र लिङ्ग है, क्रिया अङ्ग है और उनका प्रयोग संयोग है। पुरुष लिङ्ग है, प्रकृति अङ्ग है और उन दोनों के प्रेरक के रूप में स्थित ईश्वर संयोग है। अकार लिङ्ग है, उकार अङ्ग है और मकार संयोग है। जिसके द्वारा लिङ्ग सम्बन्ध की प्राप्ति होती है और मलत्रय का क्षय होता है, उसे 'दीक्षा' कहते हैं। वह दीक्षा वेधात्मिका, मन्त्रात्मिका और क्रियात्मिका के भेद से तीन प्रकार की होती है। उन दीक्षाओं से युक्त तथा परम भक्ति से सम्पन्न साधक तीन प्रकार के मलों को जलाकर लिङ्ग और अङ्ग के समुचित संयोग से स्वयं को कृतार्थ बनाता है।

षष्ठ अधिकरण में बताया गया है कि लिङ्ग यद्यपि एक ही होता है, तथापि शक्ति के भेद से वह नानात्व को प्राप्त होता है। भक्ति के भेद से विभिन्न प्रकार के जीवरूपी अङ्गों में वह लिङ्ग प्रतिष्ठित होता है, जिससे निरन्तर प्रकाशमान सब प्रकार के लिङ्ग और अङ्ग के साहित्य का निर्माण होता है। बीच-बीच में वही विविध प्रकार का भासित होते हुए अंत में पञ्चाक्षर एवं षडक्षर शिवमन्त्र के रूप में तन्त्र सम्मत अर्थ को ग्रहण करता है।

सप्तम अधिकरण में सम्पूर्ण क्रियायें करते हुए भी उस निर्लेपता के आधायक श्रीलिङ्गार्पण के सद्भाव का वर्णन है। क्रियार्पण और ज्ञानार्पण के भेद से उस अर्पण के द्वैविध्य को बता कर अन्य दूसरे विषयों का भी विशद वर्णन इस अधिकरण में किया गया है।

अष्टम अधिकरण में कहा गया है कि क्रियायें लिंग में समर्पित होकर विश्रान्ति को प्राप्त करती हैं, बन्धन का कारण नहीं बनतीं। इस प्रकार क्रियाविश्रान्ति का निरूपण करते हुए निष्काम भाव से शिवार्पण की बुद्धि से संपादित कर्म, ज्ञान और भक्ति से पुरुष तथा बन्ध्या के संभोग के समान पुत्र-रूपी फल की उत्पत्ति नहीं होती—इत्यादि बताया गया है।

वातुलशुद्धाख्यतन्त्रम्—

शैवागम-तन्त्रशास्त्र के सारभूत इस ग्रन्थ में श्रीकण्ठ के द्वारा कार्तिकेय को दिए गये मोक्षपरक उपदेश हैं। यह विस्तृत ग्रन्थ दश पटलों में विभक्त है। प्रथम पटल में तत्त्व के भेद, द्वितीय तथा तृतीय पटल में चक्र के भेद, चतुर्थ पटल में वर्ग भेद, पञ्चम में तन्त्र भेद, षष्ठ में प्रणवभेद, सप्तम में ब्रह्मभेद, अष्टम में अङ्गभेद, नवम में मन्त्रजात और दशम में मन्त्रकील का प्रतिपादन हुआ है। तन्त्रज्ञान तथा तान्त्रिक सिद्धि में यह ग्रन्थ अत्यधिक सहायक है।

प्रस्तुत लघुकलेवर के रूप में विद्यमान 'अनुभवसूत्रम्' सञ्ज्ञक ग्रन्थरत्न को पाठकगण के समक्ष रखते हुए हार्दिक प्रसन्नता के साथ विराम लेता हूँ, हम सबका भगवान् परमशिव कल्याण करें यही सतत प्रार्थना है।

एवं वातुलशुद्धाख्यतन्त्रम् **कृष्णानन्दसागरः**

ॐ नमः सच्चिदानन्ददेवाय

अथ

अनुभवसूत्रम्

प्रथमाधिकरणे पारम्पर्यक्रमः

जयति षडध्वविशुद्धिर्जयति श्रीमत्षडक्षरी विद्या ।
जयति षडङ्गसुभक्तिर्जयति स्वत एव षट्स्थलं ब्रह्म ॥ १ ॥

अवाच्यात्मस्वरूपाय शिवभावप्रदायिने ।
नमः सद्गुरुनाथाय षट्स्थलब्रह्ममूर्तये ॥ २ ॥

नमः शिवाय स्वयमात्तनाम्ने स्वभावसंसिद्धमहामहिम्ने ।
स्वलीनषट्त्रिंशदखण्डधाम्ने स्वमायया कल्पितभूतभूम्ने ॥ ३ ॥

नमः शिवायै शिववल्लभायै शिवानुभूतिप्रतिभाकलायै ।
शिवप्रसादामलविग्रहायै शिवप्रदायै भवतादुमायै ॥ ४ ॥

यस्या मात्रात्रयं नाम व्यत्यस्तप्रणवात्मकम् ।
बभौ ह्रस्वद्वयं दीर्घं द्विमात्रत्वादुमैव सा ॥ ५ ॥

तपोमया सार्धमुपासितत्वाच्छिवः सदानन्दचिदात्मसंज्ञः ।
प्रशस्यते सोम इति प्रतीत्या तमैपुराधीश्वरमानतोऽस्मि ॥ ६ ॥

एकाक्षराभिधेयोऽभूदैकारेणेश्वरः स्वयम् ।
यत्पुरं वपुरैश्वर्यं परं धाम तदैपुरम् ॥ ७ ॥

मलप्रहारिणो नाम गङ्गात्रिमलनाशिनी ।
त्रिदीक्षापथगा तीर्थं तत्तीरं क्षेत्रमैपुरी ॥ ८ ॥

तामैपुरीमहं वन्दे भवपाशनिकृन्तनीम् ।
यस्यां सन्निहितः प्रीत्या सोमः सोमार्धशेखरः ॥ ९ ॥

विततविविधलोकव्यापिना स्वेन भासा
रविशशिशिखिमुख्यान् भासयन् ज्योतिराख्यान् ।
वसति विमलविद्याजन्मवासे निवासे
जयति स खलु योऽसावैपुरीसोमनाथः ॥ १० ॥

तस्य प्रसादेन तपोबलेन
ज्ञानक्रियाचारसमन्वयेन ।
विष्णोः स्वयं देशिक एव जातः
साक्षाच्छिवात्मादिगुरूपमन्युः ॥ ११ ॥

उपमन्युशिवाचार्यनामतः श्रीमदैपुरे ।
जातः प्राथमिकः श्रीमानुपमन्युर्मुनीश्वरः ॥ १२ ॥

यः स्वेच्छया ह्यैपुरसोमनाथपादारविन्दप्रवणैकचेताः ।
आविर्बभूवादिगुरूपमन्योः श्रीभीमनाथप्रभुरार्यवेद्यः ॥ १३ ॥

तस्य प्रभोरुदभवत् करुणाबलेन
विद्याविलासविभवाकृतिपात्रगात्रः ।
आचार्यलक्षणपरिस्फुटसच्चरित्रः
श्रीमान् महागुरुकलेश्वरनामधेयः ॥ १४ ॥

आचार्यस्य कलेश्वराह्वयमहादेवस्य सूनुर्महान्
श्रौतस्मार्तसमागमप्रथितनिष्ठैकप्रतिष्ठापरः ।
शैवाद्वैतशिरोव्रताङ्गसमयाचारक्रियादेशिकः
साक्षादैपुरमन्दिरः परगुरुः श्रीबोप्पनाथः प्रभुः ॥ १५ ॥

श्रीमद्देशिकबोप्पनाथपरमेशानात्मजः सद्गुरुः
श्रीसोमेश्वरलिङ्गभक्तियजनध्यानैकनिष्ठापरः ।
श्रीवीरव्रतसत्यधर्मनियमश्रद्धादिरूढक्रियः
श्रीशैवोत्तरतत्त्वयोगरसिकः श्रीनाकराजप्रभुः ॥ १६ ॥

श्रीनाकराजपरमेश्वरदेशिकेन्द्र-
कारुण्यबन्धुरकटाक्षनिरीक्षणेन ।
जातः शिवैकगतमानसचारुचेष्टः
श्रीसङ्गमेश्वरमहाप्रभुरार्यवर्यः ॥ १७ ॥

एतस्य सङ्गमेशार्यवर्यस्यायं तनूभवः ।
नाम्ना कल्याणदः श्रीमान् मायिदेव इति स्थितः ॥ १८ ॥

माहेशानां स्वभक्तानां कल्याणपदकाङ्क्षिणाम् ।
ददाति नित्यकल्याणं तेन कल्याणदः श्रुतः ॥ १९ ॥

मायया कथ्यते मायी मायी विष्णुरिति स्मृतः ।
मायिनो यः परो देवो मायिदेवः स उच्यते ॥ २० ॥

तस्मात् कल्याणदः श्रीमान् मायिदेवः शिवः स्वयम् ।
तस्यास्य परमेशस्य नामाङ्कोऽयं शिवात्मकः ॥ २१ ॥

सत्यशुद्धशिवाद्वैतविद्यातन्त्रस्वतन्त्रधीः ।
कल्याणदाह्वयः श्रीमान् मायिदेवमहाप्रभुः ॥ २२ ॥

जयति परमशैवः स्वात्मविद्याधिदैवः
कुमतमतविभेदी षट्स्थलब्रह्मवादी ।
गुरुपदनिजभक्तः केवलोऽनादिमुक्तः
सुचरितशिववर्त्मा मायिदेवो महात्मा ॥ २३ ॥

अयं शिवाद्वैतपरो महात्मा परम्परापावनसम्प्रदायः ।
शिवेन देव्यै कथितं रहस्यं ततान यत्षट्स्थलनिर्णयं तत् ॥ २४ ॥

कामिकाद्या वातुलान्ताः शिवेनोक्ताः शिवागमाः ।
तेषु वातुलसंज्ञोऽयं सर्वोत्कृष्टो महागमः ॥ २५ ॥

वातुलाख्ये महातन्त्रे पूर्वोत्तरविभेदतः ।
भागद्वयं समाख्यातं तस्मिन्नुत्तरनामनि ॥ २६ ॥

तन्त्रोत्तरं प्रदीपाख्यं शिवसिद्धान्ततन्त्रकम् ।
अस्ति तत्राह देवेशो देव्यै षट्स्थलनिर्णयम् ॥ २७ ॥

श्रुतिस्मृतीतिहासैश्च शिवधर्मादिशास्त्रकैः ।
कथ्यते शिवसिद्धान्ततन्त्रं षट्स्थलनिर्णयम् ॥ २८ ॥

शिवागमैः शिवाद्वैतरहस्यैः पारमार्थिकैः ।
कथ्यते शिवसिद्धान्ततन्त्रं षट्स्थलनिर्णयम् ॥ २९ ॥

सर्वैरुपनिषद्वाक्यैः पुराणैरुत्तरार्धकैः ।
कथ्यते शिवसिद्धान्ततन्त्रं षट्स्थलनिर्णयम् ॥ ३० ॥

गीतासारैः समस्तैश्च पुरातनमहात्मनैः ।
कथ्यते शिवसिद्धान्ततन्त्रं षट्स्थलनिर्णयम् ॥ ३१ ॥

गुरूक्त्या स्वानुभूत्या च तर्कतश्च प्रमाणतः ।
कथ्यते शिवसिद्धान्ततन्त्रं षट्स्थलनिर्णयम् ॥ ३२ ॥

एतेषामेव सर्वार्थसारमादाय सादरम् ।
शिवोक्तं शिवसिद्धान्ततन्त्रं वक्ष्ये समासतः ॥ ३३ ॥
यैश्च कैश्चिदपि श्लोकैस्तत्प्रारब्धं समाप्यते ।
तद्विवक्षा मया कार्या किमन्यैर्बहुविस्तरैः ॥ ३४ ॥

तत्र तावदिदं पूर्वं पारम्पर्यक्रमाभिधम् ।
स्थलनिर्देशसंज्ञं तु द्वितीयमत उच्यते ॥ ३५ ॥

तृतीयमुच्यते साक्षाल्लिङ्गस्थलनिरूपणम् ।
चतुर्थं कीर्त्यते तद्वदङ्गस्थलनिरूपणम् ॥ ३६ ॥

पञ्चमं चैव लिङ्गाङ्गसंयोगविधिसंज्ञकम् ।
सर्वाङ्गलिङ्गसाहित्यं षष्ठाधिकरणं भवेत् ॥ ३७ ॥

श्रीलिङ्गार्पणसद्भावसंज्ञं सप्तममिष्यते ।
क्रियाविश्रान्तिसंज्ञाधिकरणं चाष्टमं भवेत् ॥ ३८ ॥

एवमष्टाधिकरणं शिवसिद्धान्ततन्त्रकम् ।
एतद्यो वेद सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरति प्रभुः ॥ ३९ ॥
शिवसिद्धान्तकं तन्त्रं शिवाद्वैतशिवं पदम् ॥ ४० ॥

इत्यनुभवसूत्रे षट्स्थलनिर्णये पारम्पर्यक्रमो नाम
प्रथमाधिकरणं सम्पूर्णम् ॥ १ ॥

द्वितीयाधिकरणे स्थलनिर्देशः

तदिदानीं प्रवक्ष्यामि स्थलनिर्देशमादितः।
यदुक्तं देवदेवेन रहस्यार्थं समासतः॥ १॥
एकमेव परं ब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम्।
शिवतत्त्वं शिवाचार्याः स्थलमित्याहुरादरात्॥ २॥

सर्वेषां लयभूतत्वाल्लयभूतत्वतस्ततः।
तत्त्वानां महदादीनां स्थलमित्यभिधीयते॥ ३॥
यत्रादौ स्थीयते विश्वं प्राकृतं पौरुषं यतः।
लीयते पुनरन्ते च स्थलं तत्प्रोच्यते ततः॥ ४॥

स्थकारः स्थानवाची स्याल्लकारो लयवाचकः।
तयोः कारणभूतं यत्तदेव स्थलमुच्यते॥ ५॥
अधिष्ठानं समस्तस्य स्थावरस्य चरस्य च।
जगतो यद्भवेत् तत्त्वं तद्धि वै स्थलमुच्यते॥ ६॥
आधारं सर्वशक्तीनां ज्योतिषामखिलात्मनाम्।
यत्तत्त्वं भवति प्राज्ञैः स्थलं तत्परिगीयते॥ ७॥
आलयः सर्वभूतानां लोकानां सर्वसम्पदाम्।
यद्भवेत् परमं ब्रह्म स्थल तत्प्राहुरक्षरम्॥ ८॥
परनिर्वाणनिष्ठानां यद्भवेत् परमं पदम्।
तदाहुः स्थलमद्वैतं शिवज्ञानैकतत्पराः॥ ९॥

स्वशक्तिक्षोभमात्रेण स्थलं तद् द्विविधं भवेत्।
एकं लिङ्गस्थलं प्रोक्तमन्यदङ्गस्थलं स्मृतम्॥ १०॥
लिङ्गाङ्गोपाधिभेदेन द्विधा भिन्नं परस्परम्।
महान् घटप्रभेदेन यथाऽऽकाशः प्रतीयते॥ ११॥

प्रतीयते तथा चैव स्थलं लिङ्गाङ्गभेदतः ।
स्थलं नाम परं तत्त्वं शिवरुद्रादिसंज्ञकम् ॥ १२ ॥
उपास्योपासकत्वेन स्वयमेव द्विधा भवेत् ।
लिङ्गस्थलमुपास्यं स्यादङ्गस्थलमुपासकम् ॥ १३ ॥
उपास्यत्वं तथोपासकत्वं च परमः शिवः ।
अप्रच्युतात्मभेदेन स्थितः सन्नात्मलीलया ॥ १४ ॥
स्वशक्त्या युगपत् साक्षात् प्राप्त एव स्वयं क्रमात् ।
नाशिवस्य शिवोपास्तिर्घटते जन्मकोटिभिः ॥ १५ ॥
शिवस्यैव शिवोपास्तिरिति नानाश्रुतिस्थितिः ।
चिन्मात्रं परमं साक्षात् स्थलं सत्यादिलक्षणम् ॥ १६ ॥
लिङ्गाङ्गत्वशिवात्मत्वभेदेनैव स्वयं स्थितम् ।
शिवत्वेनात्मरूपेण यथा चिन्मात्रमुच्यते ॥ १७ ॥
लिङ्गत्वेनाङ्गरूपेण स्थलमात्रं तथोच्यते ।
स्थलं चिन्मात्रमेव स्याल्लिङ्गं स्याच्छिव एव हि ॥ १८ ॥
तदाङ्गं जीव एव स्यादिति शैवी परा स्थितिः ।
यथा स्थलं द्विधाभूतं तथा शक्तिर्द्विधा भवेत् ॥ १९ ॥
शक्तिरप्रतिमा साक्षाच्छिवेन सहधर्मिणी ।
साक्षिणी सत्यसम्पूर्णा निर्विकल्पा महेश्वरी ॥ २० ॥
सा शक्तिर्द्विविधा भूता स्वस्वातन्त्र्यबलेन तु ।
समानधर्मिणीत्वेन विभक्ता भक्तवत्सला ॥ २१ ॥
लिङ्गस्थलाश्रया काचित् काचिदङ्गस्थलाश्रया ।
लिङ्गस्थलाश्रया शक्तिः कलारूपा प्रकीर्तिता ॥ २२ ॥
अङ्गस्थलाश्रया शक्तिर्भक्तिरूपा भवापहा ।
यथा महानलज्वाला विभक्ता दीपिकाकृतिः ॥ २३ ॥
तथा माहेश्वरी शक्तिर्विभक्ता भक्तिरूपिणी ।
ज्वाला तमस्विनी यस्माद्दीपिका सुप्रकाशिनी ॥ २४ ॥

तस्मात् सवासना शक्तिर्भक्तिर्निर्वासना मता।
भक्तिर्महत्तरा शुद्धा सुसूक्ष्मा शोभना परा ॥ २५ ॥
सच्चिदानन्दरूपा स्याद् भुक्तिमुक्तिफलप्रदा।
शक्तिरेव स्मृता भक्तिर्भक्तिरेव हि सा सदा ॥ २६ ॥
शक्तिभक्त्योर्न भेदोऽस्ति परमार्थनिरूपणे।
शक्तिः प्रवृत्तिराख्याता निवृत्तिर्भक्तिरीरिता ॥ २७ ॥
शक्त्या प्रपञ्चसृष्टिः स्याद्भक्त्या तद्विलयो मतः।
शक्तिवैचित्र्यतो रूपं नीरूपमपि याति हि ॥ २८ ॥
भक्तिवैचित्र्यतो रूपमपि नीरूपतामियात्।
प्रपञ्चवृद्ध्यपेक्षा हि शक्तेः स्वाभाविको गुणः ॥ २९ ॥
प्रपञ्चसंक्षयापेक्षा भक्तेः स्वाभाविको गुणः।
अधोमुखी भवेच्छक्तिर्भक्तिरूर्ध्वमुखी भवेत् ॥ ३० ॥
समाया शक्तिराख्याता निर्माया भक्तिरीरिता।
अपि तर्कप्रमाणाभ्यां शक्तेर्भक्तिर्गुणाधिका ॥ ३१ ॥
उपास्यत्वं भवेच्छक्त्या भक्त्योपासकता भवेत्।
तस्माल्लिङ्गस्थले शक्तिर्भक्तिरङ्गस्थले स्थिता ॥ ३२ ॥
लिङ्गस्थलं शिवः साक्षाज्जीवात्माऽङ्गस्थलं भवेत्।
लिङ्गाङ्गस्थलयोरैक्यं शिवजीवैक्यमेव हि ॥ ३३ ॥
एतद्यो वेत्ति सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरति प्रभुः।
शिवसिद्धान्तकं तन्त्रं शिवाद्वैतं शिवं पदम् ॥ ३४ ॥

इत्यनुभवसूत्रे शिवसिद्धान्ततन्त्रे षट्स्थलनिर्णये स्थलनिर्णयो नाम
द्वितीयाधिकरणं सम्पूर्णम् ॥ २ ॥

तृतीयाधिकरणे लिङ्गस्थलनिरूपणम्

इदानीमथ वक्ष्यामि लिङ्गस्थलनिरूपणम् ।
संक्षेपाद् विस्तरेणापि यथोक्तं शम्भुना पुरा ॥ १ ॥
शिव एव स्वयं लिङ्गमिति लिङ्गस्य वैभवम् ।
नान्यच्चिह्नादिकं लिङ्गं तत्सर्वं कृतकं च यत् ॥ २ ॥
लीयते गम्यते यत्र येन सर्वं चराचरम् ।
तदेतल्लिङ्गमित्युक्तं लिङ्गतत्त्वपरायणैः ॥ ३ ॥
लयगत्यर्थयोर्हेतुभूतत्वात् सर्वदेहिनाम् ।
लिङ्गमित्युच्यते साक्षाच्छिवः सकलनिष्कलः ॥ ४ ॥
लिङ्गस्थलं त्रिधा ज्ञेयं तद्भेदो वर्ण्यते क्रमात् ।
प्रथमं भावलिङ्गं स्याद् द्वितीयं प्राणलिङ्गकम् ॥ ५ ॥
तृतीयमिष्टलिङ्गं स्यादित्येतत्त्रिविधं स्मृतम् ।
निष्कलं भावलिङ्गं स्याद्भावग्राह्यं परात्परम् ॥ ६ ॥
सन्मात्रं भावलिङ्गं स्यादिति निष्ठा महात्मनाम् ।
प्राणलिङ्गं मनोग्राह्यं भवेत् सकलनिष्कलम् ॥ ७ ॥
तत्प्राणेष्वन्तर्मनसो लिङ्गमाह इति श्रुतिः ।
सकलं दृक्कलाग्राह्यमिष्टलिङ्गस्थलं महत् ॥ ८ ॥
इष्टावाप्तिकरं साक्षादनिष्टपरिहारकम् ।
इष्टिः पूजा तया नित्यमिष्टं पूजितमादरात् ॥ ९ ॥
इष्टलिङ्गमिति प्रोक्तमाचार्यैर्लिङ्गपूजकैः ।
इष्टमर्थं स्वभक्तानामनुयच्छति सर्वदा ॥ १० ॥
तदिष्टलिङ्गमित्याह तस्मादाथर्वणी श्रुतिः ।
सद्रूपं भावलिङ्गं स्याच्चिद्रूपं प्राणलिङ्गकम् ॥ ११ ॥

आनन्दरूपमाचार्यैरिष्टलिङ्गमुदाहृतम् ।
अस्यर्थो भावलिङ्गं स्यात्त्वमर्थः प्राणलिङ्गकम् ॥ १२ ॥
तदर्थस्त्विष्टलिङ्गं स्यात् पदत्रयनिरूपणे ।
भावलिङ्गं परं तत्त्वं प्राणलिङ्गं तु सूक्ष्मकम् ॥ १३ ॥
इष्टलिङ्गं भवेत् स्थूलमेतल्लिङ्गत्रयं स्मृतम् ।
स्थूलं बाह्यमिति प्रोक्तं सूक्ष्ममाभ्यन्तरं स्मृतम् ॥ १४ ॥
सबाह्याभ्यन्तरं यत्तत्परमित्यभिधीयते ।
देहप्राणात्मरूपेण क्रियामन्त्रप्रयोगतः ॥ १५ ॥
बिन्दुनादकलाभेदाल्लिंगत्रयमुदाहृतम् ।
एकमेकं स्थलं भूयो द्विविधं द्विविधं भवेत् ॥ १६ ॥
भावालिङ्गस्थलं द्वेधा प्राणलिङ्गस्थलं द्विधा ।
इष्टलिङ्गस्थलं चैव द्विधा प्रोक्तं महात्मभिः ॥ १७ ॥
महालिङ्गं प्रसादाख्यं लिङ्गमित्युभयस्थलम् ।
भावलिङ्गं भवत्येव स्वानुभूतिप्रमाणतः ॥ १८ ॥
तथा च चरलिङ्गं च शिवलिङ्गमिति द्वयम् ।
प्राणलिङ्गं भवत्येव तात्पर्यार्थो न संशयः ॥ १९ ॥
गुरुलिङ्गं तथाऽऽचारलिङ्गमित्युभयस्थलम् ।
इष्टलिङ्गं भवत्येव सत्यमुक्तमिदं मया ॥ २० ॥
महालिङ्गं प्रसादाख्यलिङ्गं च चरलिङ्गकम् ।
शिवलिङ्गं तथा चैव गुरुलिङ्गं ततः परम् ॥ २१ ॥
आचारलिङ्गमित्येव लिङ्गं षड्विधमुच्यते ।
एवं हि षड्विधं भूतं लिङ्गं परमकारणम् ॥ २२ ॥
स्वशक्तिवैभवाच्चैव स्वातन्त्र्याल्लीलयाऽपि च ।
शक्तयः षड्विधा ज्ञेयाः षट्स्थलेषु समा हि ताः ॥ २३ ॥
शक्तीनामधुना तासां सद्भावो वर्ण्यते क्रमात् ।
शान्त्यतीतोत्तरा नाम चिच्छक्तिरिति कीर्तिता ॥ २४ ॥

शान्त्यतीता परा शक्तिः शान्तिरेवादिसंज्ञिता ।
इच्छाशक्तिश्च विद्या स्यात् प्रतिष्ठा ज्ञानरूपिणी ॥ २५ ॥
निवृत्तिः स्यात् क्रियाशक्तिरिति पर्यायसङ्गतिः ।
चिच्छक्तिश्च पराशक्तिरादिशक्तिस्तथैव च ॥ २६ ॥
इच्छाज्ञानक्रियारूपाः शक्तयः षड्विधा मताः ।
स्थलानां शक्तियुक्तानां षण्णामेषां पृथक्पृथक् ।
स्वरूपलक्षणं चैव क्रमशो वर्ण्यतेऽधुना ॥ २७ ॥
आद्यन्तशून्यममलं परिपूर्णमेकं
सूक्ष्मं परात्परमनामयमप्रमेयम् ।
भावैकगम्यमजडं शिवतत्त्वमाहु-
श्चिच्छक्तिसंस्फुरणरूपमहात्मलिङ्गम् ॥ २८ ॥
ज्योतिर्मयं निजमखण्डमतीन्द्रियार्थं
ज्ञानोपलब्धममृतं परिणामबीजम् ।
सादाख्यतत्त्वमुदितं परया स्वशक्त्या
प्राहुः प्रसादघनलिङ्गमुपाधिहीनम् ॥ २९ ॥
साभ्यन्तरङ्गबहिरङ्गममूर्ततत्त्वं
ज्योतिर्मयं पुरुषमक्षरतः पराख्यम ।
स्वात्मादिशक्तिघटितं मनसैव नित्यं
ध्यातव्यमाप्तमतयश्चरलिङ्गमाहुः ॥ ३० ॥
विद्याकलाकलितरूपसुशोभमानं
दिव्यप्रभापटलमेकमुखं प्रशान्तम् ।
इच्छास्वशक्तिपरिजृम्भितमूर्ततत्त्वं
व्यक्ते ह्यहंकृतिपदे शिवलिङ्गमाहुः ॥ ३१ ॥
स्वज्ञानशक्तिविभवोत्थितकर्तृतत्त्वं
सर्वोपदेशविधितन्त्रकृतप्रतिष्ठम् ।
तेजोनिधिं परमपारसुखाम्बुराशिं
बुद्धेः पदे विनिहितं गुरुलिङ्गमाहुः ॥ ३२ ॥

कर्मात्मना सकलतत्त्वनिवासहेतो-
राधारभूतमचलं क्रियया स्वशक्त्या ।
चित्तेन धार्यमधिरूढनिवृत्तिमार्गं
ह्याचारलिङ्गमिति वेदविदो वदन्ति ॥ ३३ ॥

एवमेव स्वरूपं च लक्षणं परिकीर्तितम् ।
महालिङ्गस्थलादीनां षड्विधानां यथाक्रमम् ॥ ३४ ॥
किन्त्वेतेषां स्थलानां तु प्रादुर्भावः प्रदर्श्यते ।
शिव एव स्वचिच्छक्त्या महालिङ्गस्थलं भवेत् ॥ ३५ ॥
तदुपासकरूपत्वादैक्यस्थलमभून्महत् ।
स्फुरणाद्वै पराशक्तेर्महालिङ्गस्थले परे ॥ ३६ ॥
प्रसादलिङ्गसंज्ञं तु प्रादुरासीन्महास्थलम् ।
तदुपासकरूपत्वाच्छरणस्थलमाबभौ ॥ ३७ ॥
प्रादुर्भूते स्थले तस्मिन्नादिशक्तिप्रभावतः ।
स्थलं च चरलिङ्गाख्यं समुत्पन्नमनुत्तमम् ॥ ३८ ॥
तदुपासकरूपत्वात् प्राणलिङ्गिस्थलं बभौ ।
स्थलात् समुत्थितं ज्योतिर्मयं तस्मात् सुशोभनम् ॥ ३९ ॥
शिवलिङ्गस्थलं साक्षादिच्छाशक्तिप्रभावतः ।
तदुपासकरूपत्वात् प्रसादिस्थलमुद्बभौ ॥ ४० ॥
शिवलिङ्गस्थले ज्ञानशक्तिस्फुरणयोगतः ।
उदभूत् कारणत्वेन गुरुलिङ्गाभिधं स्थलम् ॥ ४१ ॥
तदुपासकरूपत्वान्माहेश्वरमहास्थलम् ।
गुरुलिङ्गस्थले तस्मिन् क्रियाशक्तिप्रभावतः ॥ ४२ ॥
आचारलिङ्गसंज्ञं तु स्थलं जातं सुशोभनम् ।
तदुपासकरूपत्वाद्भक्तस्थलमजायत ॥ ४३ ॥
महालिङ्गं प्रसादाख्यलिङ्गं च चरलिङ्गकम् ।
शिवलिङ्गं तथा चैव गुरुलिङ्गं ततः परम् ॥ ४४ ॥

आचारलिङ्गमित्येवं प्रवृत्तिसृष्टिमार्गतः ।
एवं लिङ्गस्थलं प्रोक्तं षड्विधं तु समासतः ।
सन्ति भेदोपभेदाश्च प्रत्येकं स्थलमत्र हि ॥ ४५ ॥
एतद्यो वेद सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरति प्रभुः ।
शिवसिद्धान्तकं तन्त्रं शिवाद्वैतं शिवं पदम् ॥ ४६ ॥

इत्यनुभवसूत्रे षट्स्थलनिर्णये लिङ्गस्थलनिरूपणं नाम
तृतीयाधिकरणं सम्पूर्णम् ॥ ३ ॥

चतुर्थाधिकरणे अङ्गस्थलनिरूपणम्

वक्ष्ये संक्षेपमात्रेण पुरा शम्भुप्रचोदितम्।
रहस्यं सारभूतार्थमङ्गस्थलनिरूपणम्॥ १॥
अनाद्यन्तमजं लिङ्गं तत्परं परमं प्रति।
यद्गच्छति महाभक्त्या तदङ्गमिति निश्चितम्॥ २॥
अं भवेत् परमं ब्रह्म तद्गतं तत्परायणम्।
अङ्गस्थलमिति प्राहुरङ्गतत्त्वविशारदाः॥ ३॥
अमिति ब्रह्म सन्मात्रं गच्छतीति गमुच्यते।
रूप्यतेऽङ्गमिति प्राज्ञैरङ्गतत्त्वविचिन्तकैः॥ ४॥
अङ्गस्थलं त्रिधा ज्ञेयमाचार्यैः सूक्ष्मदर्शिभिः।
योगाङ्गं प्रथमं प्रोक्तं भोगाङ्गं तु द्वितीयकम्॥ ५॥
त्यागाङ्गं तु तृतीयं स्यादेवमेव त्रिधा भवेत्।
शिवयोगसुखावाप्त्या योगाङ्गमिति गीयते॥ ६॥
शिवेन सह भोगेन भोगाङ्गमिति कथ्यते।
संसारभ्रान्तिसंत्यागात्त्यागाङ्गमिति पठ्यते॥ ७॥
योगाङ्गं कारणं प्रोक्तं भोगाङ्गं सूक्ष्ममुच्यते।
त्यागाङ्गं स्थूलमित्युक्तमेवं भेदोपभेदतः॥ ८॥
सुषुप्त्यवस्था योगाङ्गं भोगाङ्गं स्वापनाभिधा।
जाग्रदित्युदितावस्था त्यागाङ्गमिति लक्ष्यते॥ ९॥
योगाङ्गं प्राज्ञ एव स्याद्भोगाङ्गं तैजसो भवेत्।
त्यागाङ्गं विश्व एव स्यात् परमार्थनिरूपणे॥ १०॥
इत्येवं त्रिप्रकारैस्तत्प्रोक्तमङ्गस्थलं क्रमात्।
प्रत्येकं पृथगर्थत्वात् साम्प्रतं प्रोच्यते द्विधा॥ ११॥

योगाङ्गमैक्यं शरणस्थलमित्युभयं भवेत् ।
प्राणलिङ्गि प्रसादीति द्वयं भोगाङ्गमिष्यते ॥ १२ ॥
माहेश्वरस्थलं भक्तस्थलमित्युभयं तथा ।
त्यागाङ्गं भवतीत्येवं प्रोच्यते पारमार्थिकैः ॥ १३ ॥
कारणं हि भवेदैक्यं शरणं तु द्वयात्मकम् ।
सूक्ष्मं स्यात्प्राणलिङ्गीति प्रसादीत्युभयात्मकम् ॥ १४ ॥
स्थूलं माहेश्वरं भक्तमिति स्याद् द्वितयात्मकम् ।
प्राज्ञ एव भवेदैक्यस्थलं च शरणस्थलम् ॥ १५ ॥
तैजसः प्राणलिङ्गि स्यात् प्रसादीति तथैव च ।
विश्वो माहेश्वरं भक्तस्थलं चैव भवत्युमे ॥ १६ ॥
ऐक्यं तु शरणं नाम प्राणलिङ्गि प्रसादि च ।
माहेश्वरं भक्तमिति क्रमात् षट्स्थलमुच्यते ॥ १७ ॥
स्थिरा यत्र परा भक्तिर्विना संसृतिसंगतिम् ।
स्थलं तदेतदित्याहुः स्थलशब्दार्थवादिनः ॥ १८ ॥
भक्तिवैचित्र्यसंयोगपरिणामप्रभावतः ।
नामरूपक्रियाभिन्नषड्विधाङ्गस्थलं भवेत् ॥ १९ ॥
सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः ।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरंगानि महेश्वरस्य ॥ २० ॥
षट्स्थलेषु प्रविश्यैषा भक्तिः षड्विधरूपिणी ।
क्रमात् प्रवर्तते तत्तल्लक्षणोपाधिभेदतः ॥ २१ ॥
मधुरादिषु यत्षट्सु प्रविश्य सलिलं यथा ।
तत्तदाकारतो भाति तथा भक्तिः स्थले स्थले ॥ २२ ॥
षड्विधाकारतो भिन्ना भक्तिः साक्षाच्छिवात्मिका ।
षण्णामैक्यादिभक्तान्तस्थलानां वर्तते पदे ॥ २३ ॥
यथा शक्तिर्महालिङ्गाद्याचारान्तेष्ववस्थिता ।
तथैवैक्यादिभक्तान्तेष्वियं भक्तिरवस्थिता ॥ २४ ॥

भक्तिः समरसाकारा प्रथमा परिगीयते ।
आनन्दाकारतो भाति द्वितीया भक्तिरुत्तमा ॥ २५ ॥
तृतीयाऽनुभवाकारा भक्तिर्भवविनाशिनी ।
चतुर्थी परमा भक्तिरवधानात्मिका मता ॥ २६ ॥
पञ्चमी नैष्ठिकी भक्तिः षष्ठी सद्भक्तिरीरिता ।
षोढाभक्तिसमेतानामङ्गानामनुपूर्वशः ।
पृथग्लक्षणसद्भावस्थितिरत्र निगद्यते ॥ २७ ॥

नाहं त्वमप्रथितशब्दविभेदवृत्ति-
र्न प्राणदेहमनइन्द्रियभौतिकानि ।
सर्वं भ्रमात्मकमिदं मयि नेति भावा-
दैक्यस्थलं समरसं सुखरूपमाहुः ॥ २८ ॥
ज्ञानप्रकाशबलतः स्वयमेव लिङ्गं
देहेन्द्रियादि ममरूपमिति प्रबुध्य ।
युक्ते समस्तविषये सति यद्विशुद्धं
तत्प्राहुरागमविदः शरणस्थलं हि ॥ २९ ॥
प्राणेन्द्रियादिषु ममाहमिति प्रमोहं
सम्भ्रान्तिसिद्धमपहाय समस्तमेतत् ।
लिङ्गे निधाय मनसा यदनुप्रयुक्तं
तत्प्राणलिङ्गि सुचरस्थलमाहुरार्याः ॥ ३० ॥
आत्मोपभोगविषयाणि हि सावधानं
द्रव्याण्यहङ्कृतिमितैरखिलैः स्ववर्गैः ।
लिङ्गे समर्प्य बहुशो लभते प्रसादं
यत्तत्प्रसादि गदितं गुरुभिः स्थलं स्यात् ॥ ३१ ॥
आस्तिक्यबुद्धिनियमव्रतसत्यधर्म-
शौचादिलक्षणपरिस्फुटसच्चरित्रम् ।
लिङ्गैक्यनैष्ठिकतया सह वीरवृत्तं
माहेश्वरस्थलमिति प्रवदन्ति सन्तः ॥ ३२ ॥

मिथ्यैव सत्यमिव भाति इदं शरीरं
प्राणार्थजातमिति तत्र निवृत्तचित्तम् ।
भक्तिक्रियाचरणयैव सदा विरक्तं
भक्तस्थलं भवविकारविदूरमाहुः ॥ ३३ ॥

एवमेव क्रमात् प्रोक्तमैक्यादीनां सुवर्चसाम् ।
षड्विधाश्रमिणामेषां पृथगाचारलक्षणम् ॥ ३४ ॥

आविर्भूतेरथैतेषामीषद्भेदः प्रदर्श्यते ।
आत्मनाऽऽकाशसम्भूतिराकाशाद्वायुसम्भवः ॥ ३५ ॥

वायोरग्निसमुत्पत्तिरग्नेरापः उदाहृताः ।
अद्भ्यस्तु पृथ्वीसम्भूतिर्लक्षणैक्यप्रभावतः ॥ ३६ ॥

ऐक्यस्थलादिभक्तान्तस्थलसम्भूतिरीरिता ।
ऐक्यादिभक्तपर्यन्ताश्रमिणां षट्स्थलात्मनाम् ॥ ३७ ॥

अङ्गानामधुना तेषामङ्गलक्षणमुच्यते ।
आत्माङ्गमैक्यमेव स्याद्व्योमाङ्गं शरणस्थलम् ॥ ३८ ॥

वाय्वङ्गं प्राणलिङ्गि स्यादनलाङ्गं प्रसादि च ।
माहेश्वरं जलाङ्गं स्याद्भक्तं भूम्यङ्गमिष्यते ॥ ३९ ॥

बिन्दुनादकलाभेदात् त्रिविधानि विलोमतः ।
षट्स्थलानि विभक्तानि द्वितयं द्वितयं क्रमात् ॥ ४० ॥

शरीरप्राणजीवानां त्रयाणां भेदतः क्रमात् ।
विलोमतो विभक्तानि षटस्थलान्युभयोभयम् ॥ ४१ ॥

षट्स्थलानि त्रिभागेन द्विविधानि परस्परम् ।
ज्ञानात्मकतया त्रीणि क्रियात्मकतया तथा ॥ ४२ ॥

ज्ञानात्मकस्थलं ह्यैक्यं शरणं प्राणलिङ्गिकम् ।
क्रियात्मकं प्रसादि स्यान्माहेश्वरमतः परम् ॥ ४३ ॥

ऐक्यं च शरणं नाम प्राणलिङ्गि प्रसादि च ।
माहेश्वरं भक्तमिति प्रवृत्तिः सृष्टिमार्गतः ॥ ४४ ॥

एवमङ्गस्थलं प्रोक्तं षड्विधं तु समासतः ।
इतः परं न वक्तव्यं शेषोऽन्यो ग्रन्थविस्तरः ॥ ४५ ॥
एतद्यो वेद सोऽविद्याग्रन्थि विकिरति प्रभुः ।
शिवसिद्धान्तकं तन्त्रं शिवाद्वैतं शिवं पदम् ॥ ४६ ॥

इति वातुलोत्तरतन्त्रे शिवानुभवसूत्रे षट्स्थलनिर्णयेऽङ्गस्थलनिरूपणं नाम चतुर्थाधिकरणं सम्पूर्णम् ॥ ४ ॥

पञ्चमाधिकरणे लिङ्गाङ्गसंयोगविधिः

अथेश्वरेणोक्तमतीव गुह्यं
देव्या कृतप्रश्नसुनिश्चितार्थम् ।
गुरूपदेशानुभवप्रसिद्धं
लिंगांगसंयोगविधिं प्रवक्ष्ये ॥ १ ॥
शिव एव स्वयं लिंगमात्मैवांगस्थलं भवेत् ।
तयो शिवात्मनोः सम्यग्योगः संयोग एव हि ॥ २ ॥
आत्मायं केवलः शुद्धः शिवस्यांशः सदाऽमलः ।
नित्यो निरञ्जनः शान्तस्तस्मादात्मा स्वयं शिवः ॥ ३ ॥
सोऽयमात्मा शिवांगं स्याच्छिवेनांगीकृतत्वतः ।
सर्वज्ञत्वादिभेदैश्च शिवांगमिदमिष्यते ॥ ४ ॥
सर्वज्ञत्वं च तृप्तित्वं तथानादिप्रबोधता ।
स्वतन्त्रतापि चालुप्तशक्तिताऽनन्तशक्तिता ॥ ५ ॥
इत्येतैर्लक्षणैः षड्भिः शिवांगमिति लक्ष्यते ।
तस्मादंगस्थलं साक्षादात्मैव हि न संशयः ॥ ६ ॥
लिंगस्थलं शिवः साक्षात् सत्यमेव मयोदितम् ।
यथा लिंगस्थलं शक्त्या स्वीयया बहुधा भवेत् ॥ ७ ॥
तथा चांगस्थलं भक्त्या स्वीयया बहुधा भवेत् ।
यद्यल्लिंगस्थलं साक्षाच्छिवो भवति शक्तितः ॥ ८ ॥
तत्तदंगस्थलं साक्षादात्मा भवति भक्तितः ।
यद्यद्रूपमुपास्यत्वाच्छिवो भवति शक्तिमान् ॥ ९ ॥
उपासकत्वतश्चात्मा तत्तदाप्नोति भक्तिमान् ।
यद्यत्स्वरूपमाधत्ते पूज्यत्वेन महेश्वरः ॥ १० ॥

पूजकत्वेन चात्मानं तत्तद्रूपमनुव्रजेत् ।
यद्यत्स्वरूपमाधत्ते साध्यत्वात् परमेश्वरः ॥ ११ ॥
साधकत्वादसावात्मा तत्तदास्थाय तिष्ठति ।
यद्यत्स्वरूपमाधत्ते गुरुत्वेनाम्बिकापतिः ॥ १२ ॥
शिष्यत्वेनायमात्मा च तत्तदादाय वर्तते ।
उपास्योपासकौ पूज्यपूजकौ साध्यसाधकौ ॥ १३ ॥
गुरुशिष्यौ शिवात्मानौ निगद्येते महात्मभिः ।
अथ संयोगसद्भाव उच्यते साम्प्रतं मया ॥ १४ ॥
सम्यग्योगो हि संयोगो भवेल्लिलगांगयोः सदा ।
संयोग एव सायुज्यरूपा मुक्तिर्न चापरा ॥ १५ ॥
तस्माल्लिलगांगसंयोगात् परा मुक्तिर्न विद्यते ।
मुक्तेः परतरा भक्तिरिति सत्यपरा श्रुतिः ॥ १६ ॥
इतः परं न वक्तव्यं बहुनोक्तेन किं फलम् ।
ततो लिंगांगसंयोगविधिरत्र प्रदर्श्यते ॥ १७ ॥
विधिः कर्तव्यरूपोपदेश इत्येव निश्चितः ।
उपदेशप्रसिद्ध्यर्थमाचार्यं भवतारकम् ॥ १८ ॥
शिवविद्याप्रदातारमविद्याग्रन्थिभेदकम् ।
शिवसिद्धान्ततन्त्रैककर्तारं परमं शिवम् ॥ १९ ॥
सदा लिंगांगसंयोगपरायणमनामयम् ।
उपगच्छत्यसौ देही स्वाविद्याविनिवृत्तये ॥ २० ॥
सोऽयमात्मा स्वयं साक्षाच्छिवस्यांशोऽपि तत्त्वतः ।
व्यवहारदशायां तु संसारीव प्रकाशते ॥ २१ ॥
संसारोऽविद्यया चास्य सत्यवत् परिकल्पितः ।
देहेन्द्रियादिसंघातेऽहंममभ्रान्तिरूपतः ॥ २२ ॥
स्वस्मिन्नेव स्थिताऽविद्यामोहितः पुरुषः स्वकम् ।
शिवांशत्वं स्वकां शक्तिमविज्ञाय स्वकर्मणा ॥ २३ ॥

कोऽहमित्यब्रवीद् देही गुरुं परमकारणम् ।
गुरुस्तत्त्वमसीत्याह सत्यार्थं करुणानिधिः ॥ २४ ॥
अविद्याकृतकं सर्वमिदं देहेन्द्रियादिकम् ।
असत्यं भ्रान्तिसंसिद्धं सत्यवत् परिवर्तते ॥ २५ ॥
तस्मात्तत्कृतभ्रान्तिविनाशार्थमहो तव ।
नित्यं लिंगांगसंयोगज्ञाननिष्ठत्वमावह ॥ २६ ॥
लिगं तत्पदमाख्यातमगं त्वम्पदमीरितम् ।
संयोगोऽसिपदं प्रोक्तमनयोरंगलिंगयोः ॥ २७ ॥
सन्मात्रं लिंगमाख्यातं चिन्मात्रं त्वंगमीरितम् ।
आनन्दमात्रमनयोः संयोग इति कीर्तितः ॥ २८ ॥
नादो लिंगमिति प्रोक्तो बिन्दुरंगमितीरितः ।
कला संयोग इत्युक्ता तयोर्लिङ्गांगयोस्तथा ॥ २९ ॥

मन्त्रो लिंगमिति प्रोक्तः क्रिया त्वंगमितीरिता ।
क्रियामन्त्रप्रयोगस्तु संयोगो ह्यंगलिंगयोः ॥ ३० ॥
अंगं प्रकृतिराख्यातं लिंगं पुरुष ईरितः ।
तयोः प्रेरकभावेन संयोगः स्वयमीश्वरः ॥ ३१ ॥
अकारो लिंगमित्युक्तश्चोकारोऽङ्गमितीरितः ।
संयोगोऽयं मकारः स्यात् प्रणवांशप्रभेदतः ॥ ३२ ॥
ह्रस्वः स्याल्लिंगमेवांगं दीर्घः प्लुतमतः परम् ।
तयोः संयोग इत्येवमोङ्कारेणाभिधीयते ॥ ३३ ॥
वागंगं लिंगमेवार्थः प्रतिपत्तिस्तयोः सदा ।
संयोग इति विद्वद्भिः प्रोक्तो लिंगांगयोगिभिः ॥ ३४ ॥

छायातपौ जीवशिवावसौ गुरुः
शिवोऽस्य शिष्यः खलु जीवसंज्ञिकः ।
लिङ्गं परं हृद्गगनं तदङ्गकं
प्राणानिलोऽयं शिवसूत्रमच्यते ॥ ३५ ॥

अनुभवसूत्रं सूत्रं शिवसिद्धान्तसंज्ञिकं तन्त्रम् ।
लिगं षट्स्थलपरमब्रह्मैवेत्यत्र धारयेत् सततम् ॥ ३६ ॥
इत्युक्त्वा पुरुषस्यास्य देशिकः करुणाबलात् ।
चक्रे दीक्षां महाशैवीमविद्यापाशकृन्तनीम् ॥ ३७ ॥
दीयते लिंगसम्बन्धः क्षीयते च मलत्रयम् ।
दीयते क्षीयते यस्मात् सा दीक्षेति निगद्यते ॥ ३८ ॥
सा दीक्षा परमा शैवी त्रिधा भवति निर्मला ।
एका वेधात्मिका साक्षादन्या मन्त्रात्मिका मता ॥ ३९ ॥
क्रियात्मिका परा काचिदेवमेव त्रिधा भवेत् ।
हस्तमस्तकसंयोगच्छलाद् वेधेति गीयते ॥ ४० ॥
गुरुणोदीरिता कर्णे या सा मान्त्रीति कथ्यते ।
शिष्यपाणितले दत्ता या दीक्षा सा क्रियोच्यते ॥ ४१ ॥
पाशानशेषान् कर्तर्या छित्वा लिगं समादिशेत् ।
कर्तरी शिवदीक्षा स्याद्यया पाशान् छिनत्त्यसौ ॥ ४२ ॥
कृत्वा शैवीं परां दीक्षां दत्त्वा विद्यां शिवात्मिकाम् ।
छित्वाऽविद्यामहापाशं कलाध्वानं विचिन्तयेत् ॥ ४३ ॥
यथा कला तथा भावो यथा भावस्तथा मनः ।
यथा मनस्तथा दृष्टिर्यथा दृष्टिस्तथा स्थलम् ॥ ४४ ॥
सा कला परमा सूक्ष्मा तत्त्वानां बोधिनी परा ।
तामाकृष्य यथान्यायं लिंगे समुपवेशयेत् ॥ ४५ ॥
सा बाह्याभ्यन्तरं साक्षाल्लिगं ज्योतिः परं स्वकम् ।
तिले तैलमिवाभाति ह्यरण्यामिव पावकः ॥ ४६ ॥
क्षीरे सर्पिरिव स्रोतस्यम्बुवत् स्थितमात्मनि ।
तद्भावलक्षणां भक्ति सुसूक्ष्मां परमामपि ॥ ४७ ॥
दर्शयामास शिष्यस्य देशिकः परमेश्वरः ।
तस्मिन् दृष्टे परे लिंगे निष्कले निरुपाधिके ॥ ४८ ॥

अस्य जीवस्य कर्माणि क्षीयन्ते सकलानि हि ।
अविद्याहृदयग्रन्थिर्भिद्यते शतधाऽपि च ॥ ४९ ॥
संशया बहुसंकल्पाश्छिद्यन्ते च सहस्रधा ।
हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् ॥ ५० ॥
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ।
ततस्तल्लिंगमस्यांगे शिष्यस्यामिततेजसः ॥ ५१ ॥
गुरुः संयोजयामास पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना ।
तनुत्रयगतानादिमलत्रयमसौ गुरुः ॥ ५२ ॥
दीक्षात्रयेण निर्दग्ध्वा लिंगत्रयमुपादिशत् ।
यथा पुरत्रयं दग्धं युगपत् पुरवैरिणा ॥ ५३ ॥
तथा मलत्रयं दग्धं युगपद् देशिकात्मना ।
वेधामनु क्रियाकारा दीक्षा शैवी शिखा मता ॥ ५४ ॥
तच्छिखा लिंगमित्युक्तं कर्म मायाणुवासना ।
रूपं कर्पूरमाख्यातं तद्गन्धोऽङ्गमितीरितम् ॥ ५५ ॥
एतल्लिंगांगसंयोगः शिखिकर्पूरयोगवत् ।
त्रिष्वङ्गेष्वस्य शिष्यस्य लिंगत्रयमयं गुरुः ॥ ५६ ॥
संयुयोज त्रिधाभूतं परादीक्षाबलेन तु ।
योगांगे भावलिंगं तु वेधादीक्षाबलेन वै ॥ ५७ ॥
मन्त्रदीक्षाबलेनैव भोगांगे प्राणलिंगकम् ।
क्रियादीक्षाबलेनायं देशिकस्तस्य चिद्घनम् ॥ ५८ ॥
इष्टलिंगं तथा चैव त्यागांगे समयोजयत् ।
योगांगमात्मनोऽङ्गत्वात् कारणांगमितीरितम् ॥ ५९ ॥
भोगांगमन्तरंगत्वात् सूक्ष्मांगमिति निश्चितम् ।
त्यागांगं बहिरंगत्वात् स्थूलांगमिति कीर्तितम् ॥ ६० ॥
जीवात्मा विश्व एव स्यादन्तरात्मा तु तैजसम् ।
परमात्मा भवेत् प्राज्ञ इति तत्त्वविदो विदुः ॥ ६१ ॥

विश्वो जाग्रदवस्थायां स्वप्नाख्यायां तु तैजसः ।
प्राज्ञः सुषुप्त्यवस्थायां लिंगत्रयमुपासते ॥ ६२ ॥
एकोऽयं पुरुषो विश्वतैजसप्राज्ञरूपतः ।
सदा स्वांगेषु संयुक्तमुपास्ते लिंगमद्वयम् ॥ ६३ ॥
उपासनैव संयोगः संयोगो द्वैतसंलयः ।
द्वैतस्य विलयश्चैव निवृत्तिः परिकीर्तिता ॥ ६४ ॥
निवृत्तिः सैव विश्रान्तिर्विश्रान्तिः परमं पदम् ।
स्फटिकस्वच्छयोर्दीपप्रभयोः करकाम्भसोः ॥ ६५ ॥
कर्पूरगन्धयोर्वायुनभसोर्भागयोगवत् ।
एवं लिंगांगसंयोगविधिना स्वात्मनि स्थिता ॥ ६६ ॥
बीजरूपा परा भक्तिः प्ररोहति समन्ततः ।
आत्मा क्षेत्रं भवेद्भक्तिर्बीजं बीजी महेश्वरः ॥ ६७ ॥
तस्मात् क्षेत्रस्य बीजस्य बीजिनश्च कदाचन ।
वियोगो नेक्ष्यते क्वापि सदा संयोग एव हि ॥ ६८ ॥
अंगमात्मेति निर्णीतं लिंगं ब्रह्मेति निश्चितम् ।
अंगस्य हृदयं लिंगं लिंगस्य हृदयं तु तत् ॥ ६९ ॥
तयोः कथं वियोगः स्यात् सदा संयोग एव हि ।
योगेन तु परा भक्तिरिति भक्तेस्तु वैभवम् ॥ ७० ॥
अस्याः स्वरूपसद्भावात् सद्भक्तिरिति कीर्तिता ।
तद्भक्त्यैव तथा चास्य भक्तस्थलमुपागतम् ॥ ७१ ॥
आचारलिंगसंयुक्तमंगं भक्तस्थलं महत् ।
तत्र स्थिता सती भक्तिः सम्पूर्णा निजविष्टया ॥ ७२ ॥
नैष्ठिकी भक्तिरित्येव कीर्तिता भक्तितत्परैः ।
तया माहेश्वरं नाम स्थलमस्य स्वरूपतः ॥ ७३ ॥
गुरुलिंगसमायुक्तमंगं माहेश्वरस्थलम् ।
तत्र संनिहिता भक्तिर्नैष्ठिकी सावधानतः ॥ ७४ ॥

अवधानात्मिका भक्तिरिति प्रोक्ता महात्मभिः ।
भक्त्या तयाऽस्य जीवस्य प्रसादिस्थलमागतम् ॥ ७५ ॥
शिवलिंगसमायुक्तं प्रसादिस्थलमागतम् ।
तत्रैव सुस्थिता भक्तिरवधानात्मिका शुभा ॥ ७६ ॥
स्वानुभूतिनिबन्धेन कीर्तिताऽनुभवात्मिका ।
प्राणलिंगि स्थलं चास्य तया भक्त्या समागतम् ॥ ७७ ॥
अंगं च चरलिंगेन संयुक्तं प्राणलिंगि यत् ।
तत्र स्वानुभवाकारा भक्तिरानन्दयोगतः ॥ ७८ ॥
प्रोक्ताऽऽनन्दात्मिका भक्तिरिति वेदान्तवेदिभिः ।
अस्यात्मनस्तया भक्त्या शरणस्थलमागतम् ॥ ७९ ॥
प्रसादलिंगसंयुक्तमङ्गं हि शरणस्थलम् ।
तत्र प्रतिष्ठिता साक्षाद्भक्तिरानन्दरूपिणी ॥ ८० ॥
सामरस्यप्रभावेण प्रोक्ता समरसात्मिका ।
ऐक्यस्थलं तया चास्य चेतनस्य समागतम् ॥ ८१ ॥
महालिंगसमायुक्तमंगमैक्यस्थलं परम् ।
तत्रैवावस्थिता भक्तिः स्वस्मिन् स्वयमवस्थिता ॥ ८२ ॥
षडंगयोगमार्गेण साधयत्ययमीश्वरम् ।
युगपत् षट्स्थलावाप्तिः साधकस्यास्य सिध्यति ॥ ८३ ॥
साध्यत्वात् षट् प्रपद्यन्त आचारादिस्थलानि वै ।
भक्त्यादीनि प्रपद्यन्ते साधकत्वात् स्थलानि वै ॥ ८४ ॥
साध्यः परशिवः साक्षादाचारादिषु षट्सु च ।
भक्त्यादिषु स्थलेष्वात्मा साधकोऽयं प्रकीर्त्यते ॥ ८५ ॥
आचारलिंगं गुरुरूपलिंगं
शिवाख्यलिंगं चरनामलिंगम् ।
प्रसादलिंगं च महात्मलिंगं
निवृत्तिमार्गेण षडाहुरार्याः ॥ ८६ ॥

भक्तं माहेश्वरं चैव प्रसादि प्राणलिंगि च ।
शरणस्थलमैक्यं हि निवृत्तिलयमार्गतः ॥ ८७ ॥
ब्रह्मा हरिश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
साक्षात्परशिवश्चेति क्रमशः षट्स्थलात्मकाः ॥ ८८ ॥
एवं लिंगांगसंयोगविधिरत्र प्रकीर्तितः ।
अस्माभिरादरेणैव शिवप्रोक्तो यथा तथा ॥ ८९ ॥
एतद्यो वेद सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरति प्रभुः ।
शिवसिद्धान्तकं तन्त्रं शिवाद्वैतं शिवं पदम् ॥ ९० ॥

इत्यनुभवसूत्रे षट्स्थलनिर्णये लिङ्गाङ्गसंयोगविधिर्नाम
पञ्चमाधिकरणं सम्पूर्णम् ॥

षष्ठाधिकरणे सर्वाङ्गलिङ्गसाहित्यम्

अथ श्रीशम्भुना प्रोक्तमनन्तार्थप्रकाशकम् ।
सर्वांगलिंगसाहित्यं वक्ष्ये संक्षेपरूपतः ॥ १ ॥
सर्वेष्वंगेषु सर्वत्र सर्वदा सर्वतोमुखम् ।
लिंगं गुरूपदेशेन सुप्रतिष्ठितमात्मनि ॥ २ ॥
प्रकाशते ततोऽमुष्य चेतनस्य निरन्तरम् ।
सर्वांगलिंगसाहित्यं प्रोच्यते लिंगतत्परैः ॥ ३ ॥
एकमेव परं लिंगं लिंगेऽस्मिन् सुप्रतिष्ठितम् ।
सर्वतोमुखमाभाति नामरूपक्रियात्मना ॥ ४ ॥
इष्टलिंगं तु बाह्यांगे प्राणलिंगं तथान्तरे ।
भावलिंगं तथैवास्मिन्नात्मांगे सुप्रतिष्ठितम् ॥ ५ ॥
हृदयांगे महालिंगं श्रोत्रांगे तु प्रसादकम् ।
त्वगंगे चरलिंगं तु दृगंगे शिवलिंगकम् ॥ ६ ॥
जिह्वांगे गुरुलिंगं तु नासिकांगे तथैव च ।
आचारलिंगमश्रान्तं सुप्रतिष्ठितमेव हि ॥ ७ ॥
यथा ज्ञानेन्द्रियांगेषु क्रमाल्लिंगं प्रतिष्ठितम् ।
तथा कर्मेन्द्रियांगेषु क्रमाल्लिंगं प्रतिष्ठितम् ॥ ८ ॥
श्रोत्रवाचोर्न भेदोऽस्ति शब्दस्य वचनस्य च ।
स्पर्शमादानयोस्तद्वद् भेदो नहि करत्वचोः ॥ ९ ॥
न नेत्रपादयोर्भेदो रूपस्य गमनस्य च ।
भेदो नानन्दरसयोर्न जिह्वागुह्ययोस्तथा ॥ १० ॥
नासिकागुदयोर्भेदो नास्ति गन्धविसर्गयोः ।
अस्ति चेदप्रमाणं स्याच्छ्रुतिः सत्यार्थवादिनी ॥ ११ ॥

श्रोत्रस्य वाचः शब्दस्य विभोर्व्योम्नस्तथैव च।
ईश्वरीमीश्वरस्यैनामीशानाख्यां विदुर्बुधाः ॥ १२ ॥
त्वक्पाणिस्पर्शवायूनामीश्वरीं मूर्तिमैश्वरीम्।
पुरुषाख्यां विदुः पूर्वे पुराणागमवेदिनः ॥ १३ ॥
चक्षुषश्चरणस्यापि रूपस्याग्नेस्तथैव च।
अघोराख्यामधिष्ठात्रीं मूर्तिमाहुर्मनीषिणः ॥ १४ ॥
रसनाया उपस्थस्य रसस्यापां तथैव च।
ईश्वरीं वामदेवाख्यां मूर्तिं मुनिवरा विदुः ॥ १५ ॥
घ्राणस्य चैव पायोश्च गन्धस्य च भुवस्तथा।
सद्योजाताह्वयां मूर्तिमीश्वरीं संप्रचक्षते ॥ १६ ॥
ज्ञानकर्मात्मनां खानामाश्रयं हृदयं भवेत्।
आश्रयत्वात् स्वनैर्मल्याद् ज्ञानकर्मोभयात्मकम् ॥ १७ ॥
इन्द्रियाणां तु सर्वेषामवकाशप्रदत्वतः।
हृदयाकाश इत्येतत् प्रोच्यते मतिमत्तमैः ॥ १८ ॥
स्थूलांगे स्थूलरूपेण सूक्ष्मांगे सूक्ष्मरूपतः।
कारणे कारणत्वेन तिष्ठन्त्येतानि खानि हि ॥ १९ ॥
तेष्वेषु खेषु सर्वेषु लिंगं सत्यादिलक्षणम्।
गुरूपदेशसंसिद्धं भासते सर्वतोमुखम् ॥ २० ॥
एतल्लिंगमुखं यत्र दृश्यते सूक्ष्मदर्शिभिः।
यदामनन्ति वेदाश्च तपांसि नियमास्तथा ॥ २१ ॥
हृदयं हृदयस्येति श्रोत्रं श्रोत्रस्य सर्वदा।
वाचो वाक् त्वक्त्वचः पाणिः पाणेश्चक्षुश्च चक्षुषः ॥ २२ ॥
पादः पादस्य जिह्वाया जिह्वा गुह्यस्य गुह्यकम्।
नासिका नासिकायाश्च पायोः पायुरिति स्थितिः ॥ २३ ॥
तल्लिंगमुखमित्याहुः शिवसिद्धान्ततान्त्रिकाः।
प्रत्येकं लिंगमस्यैव मुखं वक्ष्ये पृथक् पृथक् ॥ २४ ॥

प्राणस्य प्राणमाचारलिंगस्य मुखमुच्यते ।
जिह्वायाश्च तथा जिह्वा गुरुलिंगमुखं भवेत् ॥ २५ ॥
चक्षुषश्च तथा चक्षुः शिवलिंगमुखं भवेत् ।
त्वचस्त्वक् चररूपस्य लिंगस्य मुखमुच्यते ॥ २६ ॥
मुखं प्रसादलिंगस्य श्रोत्रं श्रोत्रस्य कथ्यते ।
हृदयं हृदयस्यैव महालिंगमुखं भवेत् ॥ २७ ॥
एवं लिंगमुखं प्रोक्तं सुप्रसिद्धमनन्तरम् ।
भक्तादिषट्स्थलानां च हस्तभेदः प्रदर्श्यते ॥ २८ ॥
वस्तुतो भाव उत्पन्नो भावाज्ज्ञानसमुद्भवः ।
ज्ञानान्मनः समुत्पन्नं मनसोऽहङ्कृतिस्तथा ॥ २९ ॥
अहङ्कारात्ततो बुद्धिर्बुद्धेश्चित्तस्य सम्भवः ।
एतेषां लक्षणं वक्ष्ये भावादीनामनुक्रमात् ॥ ३० ॥
अस्तीत्यारभ्यते वस्तु तत्सत्ता भाव उच्यते ।
ज्ञानं जानाति तं नित्यं मनस्तन्मनुते सदा ॥ ३१ ॥
अहं तदित्यहङ्कारो बुद्धिस्तन्निश्चिनोति हि ।
चित्तं स्थैर्यगुणेनैव तथैतद्वस्तुसाधकम् ॥ ३२ ॥
चित्तं भक्तस्य हस्तः स्याद् बुद्धिर्माहेश्वरस्य च ।
प्रसादिनस्तथा हस्तो ह्यहङ्कार उदीर्यते ॥ ३३ ॥
मनो हस्तो भवत्येव महतः प्राणलिंगिनः ।
ज्ञानं हस्तो भवेदस्य शरणस्य महात्मनः ॥ ३४ ॥
ऐक्यस्य भावो हस्तः स्यादेवमेवोत्तरोत्तरम् ।
आत्मांगं भावहस्तं स्यान्महालिंगार्चने रतम् ॥ ३५ ॥
ऐक्यस्थलमिति प्राहुः साक्षाद्वेदान्तपारगाः ।
व्योमांगं ज्ञानहस्तं स्यात् प्रसादार्चनतत्परम् ॥ ३६ ॥
शरणस्थलमित्याहुः शिवयोगपरायणाः ।
अनिलांगं मनोहस्तं चरलिंगार्चने रतम् ॥ ३७ ॥

प्राणलिंगिस्थलं साक्षादित्याहुः शिवधार्मिकाः ।
अनलांगमहंहस्तं शिवलिंगार्चने रतम् ॥ ३८ ॥
प्रसादिस्थलमित्याहुराचार्याः शिवशास्त्रिणः ।
जलांगं बुद्धिहस्तं च गुरुलिंगार्चने रतम् ॥ ३९ ॥
माहेश्वरस्थलं साक्षादिति प्राहुर्मनीषिणः ।
भूम्यंगं चित्तहस्तं च सदाचारार्चने रतम् ॥ ४० ॥
भक्तस्थलमिति प्राहुः शिवसिद्धान्तवेदिनः ।
एवमंगं च हस्तं च लिंगं च मुखमत्र च ॥ ४१ ॥
यथावदानुपूर्व्येण प्रावोचमहमादरात् ।
ततः पञ्चाक्षरीविद्यासाहित्यमधुनोच्यते ॥ ४२ ॥

पञ्चाक्षरी परा विद्या सतारा तु षड्क्षरी ।
स्थूलसूक्ष्मादिभेदेन स्वयमेवाष्टधा स्थिता ॥ ४३ ॥
शिवमन्त्राभिधा मन्त्रमातृका लिंगरूपिणी ।
शिवप्रदायिनी नित्यं सर्वांगेषु प्रतिष्ठिता ॥ ४४ ॥

अंगं नमःपदमसौ शिव एव लिंगं
सम्बन्ध एष यदयेतिपदं तदुक्तम् ।
लिंगांगसंगमपदत्रयबोधनार्थं
मन्त्रोऽयमेवमभिधास्यति मन्त्रराजः ॥ ४५ ॥

नमःपदं तत्खलु जीववाचि
शिवःपदं तत्परमात्मवाचि ।
अयेति तादात्म्यपदं तदेतद्
नमः शिवायेति जगाद मन्त्रः ॥ ४६ ॥

मूलाधारे नकाराख्या संस्थिता परमेश्वरी ।
अनाहते वकाराख्या सदा शैवी व्यवस्थिता ॥ ४७ ॥
विशुद्धौ तु यकाराख्या साक्षाद्विश्वेश्वरी स्थिता ।
आज्ञाचक्रे महादेवी ताराख्या समुपस्थिता ॥ ४८ ॥

आचाराख्य नकारः स्यान्मकारो गुरुलिंगकम् ।
शिकारः शिर्वालिगं स्याद्वाकारश्चरलिंगकम् ॥ ४९ ॥
यकारः स्यात्प्रसादाख्यमोङ्कारो महदुच्यते ।
षष्ठं ब्रह्म भवेत्तारं यकारः पञ्चमं भवेत् ॥ ५० ॥
चतुर्थं तु वकारः स्याच्छिकारस्तु तृतीयकम् ।
द्वितीयं तु मकारः स्यान्नकारः प्रथमं भवेत् ॥ ५१ ॥
एवं षडक्षराण्येव ब्रह्मणि क्रमशो विदुः ।
ॐकारः परिपूर्णत्वात् त्वचि सर्वत्र तिष्ठति ॥ ५२ ॥
नकारो रुधिरे स्थाति मकारो मांससंचये ।
शिकारो मेदसि स्थाति वकारोऽस्थिषु तिष्ठति ॥ ५३ ॥
यकारः स्थाति मज्जायां शुक्ले स्थाति षडात्मकः ।
एवं षडक्षरमयं शिववन्मूर्तिसुस्थितम् ॥ ५४ ॥
देहं ममेति यो ध्यायेत् सोऽहमेव न संशयः ।
सर्वांगलिंगसाहित्यमेवमेव मयोदितम् ॥
शिवप्रणीतवाक्यार्थं सम्यग्वीक्ष्य समासतः ॥ ५५ ॥
एतद्यो वेद सोऽविद्याग्रन्थि विकिरति प्रभुः ।
शिवसिद्धान्तकं तन्त्रं शिवाद्वैतं शिवं पदम् ॥ ५६ ॥

इति वातुलोत्तरतन्त्र शिवानुभवसूत्रे षट्स्थलनिर्णये
सर्वाङ्गलिङ्गसाहित्यं नाम षष्ठाधिकरणम ॥

सप्तमाधिकरणे अर्पणसद्भावः

अथ क्रियासु सर्वासु निर्लेपत्वाय चात्मनः ।
श्रीलिंगार्पणसद्भावमीश्वरोक्तं मनाग् ब्रुवे ॥ १ ॥
द्वेधा लिंगार्पणविधिः प्रोच्यते देशिकोत्तमैः ।
क्रियामतार्पणं किञ्चित् किञ्चिज्ज्ञानमतार्पणम् ॥ २ ॥
यथाकालोचितैर्द्रव्यैर्यदृच्छासम्भवैः स्वयम् ।
स्वोपभोगाय यत्कार्यं त्रिषु लिंगेषु सादरम् ॥ ३ ॥
तत्क्रियार्पणमित्याहुरर्पणैकविशारदाः ।
षट्सु लिंगेषु सर्वत्र सार्वकालिकरूपतः ॥ ४ ॥
स्वयमागतवस्तूनि ज्ञात्वा तत्तन्मुखेषु च ।
अनिच्छाविधिना कार्यमेतज्ज्ञानार्पणं विदुः ॥ ५ ॥
क्रियार्पणं वदाम्यत्र साम्प्रतं द्रव्यशुद्धये ।
या या क्रिया विधातव्या प्रस्तुता जायते पुरा ॥ ६ ॥
तां तां कुर्यान्महादेवसमर्पणधिया सुधीः ।
शिवार्पितानि द्रव्याणि न बन्धाय न मुक्तये ॥ ७ ॥
साक्षाच्छिवप्रसादाय इति शैवी परा स्थितिः ।
ततोऽर्पणविधानोऽत्र सूक्ष्मासूक्ष्मविभेदतः ॥ ८ ॥
विधीयते सदैवास्य स्वोपभोगाय चात्मनः ।
आत्मोपभोगजातानि द्रव्याणि त्रिविधानि हि ॥ ९ ॥
स्थूलाख्यं प्रविविक्ताख्यमानन्दाख्यमिति त्रिधा ।
स्थूलद्रव्यं भवेद्रूपं प्रविविक्तं रुचिर्भवेत् ॥ १० ॥
आनन्दस्तु भवेत्तृप्तिरेवमेव पृथक् क्रमात् ।
बहिरंगार्पणे रूपमन्तरंगार्पणे रुचिः ॥ ११ ॥

आत्मसंगमयं साक्षादानन्दार्पणमुच्यते ।
आत्मांगार्पणमेवात्र तृप्तिरित्यभिधीयते ।। १२ ।।

रूपद्रव्यार्पको विश्व इष्टलिंगे स्वभावतः ।
रुचिद्रव्यार्पकः साक्षात् प्राणलिंगे तु तैजसः ।। १३ ।।

भावलिंगे सदा प्राज्ञ आनन्दार्पक उच्यते ।
यद्रूपमर्पितं लिंगे तद्रूपं भोक्तुमर्हति ।। १४ ।।

रूपान्तरं न भोक्तव्यं भुक्तं चेत्तदनर्पितम् ।
यथा भुक्तिक्रिया पुंसि क्रमेणानुप्रवर्तते ।। १५ ।।

सुप्रतिष्ठितलिंगस्य न यथा पूर्वभावना ।
तथा शिवप्रसादस्य पूर्वनाम न संस्मरेत् ।। १६ ।।

पूजादौ पूजान्ते भवेदयं भक्तितः पदार्थतनुः ।
पूजान्ते पूजादौ प्रपदेत् पुनरेष हि प्रसादतनुम् ।। १७ ।।

पदार्थकायः पूजायां भक्तो भक्तिप्रभावतः ।
प्रसादकायः पूजान्ते पुनः पूजाक्रियावधिः ।। १८ ।।

यद्रूपं वस्तुनामार्चाकाले लिंगमुखार्पितम् ।
तद्रूपं पुनरर्चाकालपर्यन्तं प्रसादकम् ।। १९ ।।

लिंगस्य पूजावसरे द्रव्यं दत्तं शुभं भवेत् ।
अनावसरिकं दत्तमशुभं तदनर्पितम् ।। २० ।।

लिंगस्यावसरे यत्तद् द्रव्यं दत्तं शभं भवेत् ।
आत्मनोऽवसरे दत्तमशुभं तदनर्पितम् ।। २१ ।।

इष्टलिंगार्पितं शुद्धं प्राणलिंगमुखार्पितम् ।
सिद्धं ततः प्रसिद्धं हि भावलिंगार्पितं विदुः ।। २२ ।।

तत्तदर्पणतो लब्धं प्रसादं तत्तदादरात् ।
भुङ्क्ते यत्नात् स्वयं विश्वतैजसप्राज्ञरूपतः ।। २३ ।।

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिसर्वावस्थासु सर्वदा ।
लिंगार्पितोपभोगेन निर्लेपोऽयं न संशयः ।। २४ ।।

त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोगश्च यो भवेत् ।
त्रिविधं प्रति यो वेद स भुञ्जानो न लिप्यते ॥ २५ ॥

ज्ञानार्पणमतो वक्ष्ये स्वानुभूत्यैकगोचरम् ।
सर्वेन्द्रियमुखागामि द्रव्यदोषनिवृत्तये ॥ २६ ॥

सोऽयं षट्स्थलरूपेण तत्तल्लिगमुखार्पितम् ।
प्रसादमादरेणैव स्वतः सिद्धं समश्नुते ॥ २७ ॥

षडक्षरात्मके लिंगे सर्वांगे सुप्रतिष्ठते ।
तत्रैव चार्पितं सर्वमित्याहुः श्रुतयः खलु ॥ २८ ॥

ओमिति जगदखिलं स्याद्
नम इति न ममेदमपि शिवायेति ।
समर्पकोऽयं मन्त्रः
षडक्षरो मन्त्रनायको जयति ॥ २९ ॥

न ममेदं जगत्सर्वं शिवायेति शिवार्पणम् ।
अभिधत्ते द्विमात्राह्वो मन्त्रो लुप्तमकारकः ॥ ३० ॥

तस्मादर्पणसद्भावज्ञानमेव समभ्यसेत् ।
अथ गन्धो रसो रूपं स्पर्शः शब्दस्ततः परम् ॥ ३१ ॥

परिणामः पदार्था हि षडेते सार्वकालिकाः ।
एकैकस्य पदार्थस्य नानाभेदाः पृथक् पृथक् ॥ ३२ ॥

गन्धादय इमे मात्राः पृथ्व्यादीनामनुक्रमात् ।
एकस्मिन् वस्तुनि रतास्ते सर्वे ह्येकरूपतः ।
चन्दनादिमयो गन्धो मधुरादिमयो रसः ॥ ३३ ॥

वैद्युतादिमयं रूपं स्पर्शो मृद्वादितन्मयः ।
स्यान्नादादिमयः शब्दः परिणामस्ततः परः ॥ ३४ ॥

सुखादिमय इत्येवं नानाभेदाः प्रकीर्तिताः ।
एवम्भूतेषु सर्वेषु पदार्थेषु निरन्तरम् ॥ ३५ ॥

लिंगार्पणधिया आत्मा प्रसादसुखमश्नुते ।
द्रव्याण्येतानि सर्वाणि विभज्य स्वस्वरूपतः ।
लिंगार्पणधिया भुङ्क्ते तानि वस्तूनि सर्वदा ॥ ३६ ॥

भक्तोऽयमात्मा स्वयमेव गन्ध-
माचारलिंगार्पितमादरेण ।
भुङ्क्ते सदा सन्निहितः स्वभावात्
प्रसादरूपेण समागतं हि ॥ ३७ ॥

माहेश्वरोऽयं गुरुलिंगमूर्ते-
र्मुखे सदैवार्पितमाकलय्य ।
प्रसादभूतं रसमानुकूल्य-
स्वभावतः सादरमेव भुङ्क्ते ॥ ३८ ॥

रूपं पदार्थं शिवलिंगवक्त्रे
समर्पितं सन्ततमेव भक्त्या ।
स्वयं समायातमुपाधियोगा-
दयं प्रसादी भजते प्रसादम् ॥ ३९ ॥

स्पर्शः समादाय बहुप्रकारं
समर्पितं यच्चरलिंगवक्त्रे ।
भुङ्क्ते प्रसादात्मतयोपलब्धं
यः प्राणलिंगी स्वयमेवमात्मा ॥ ४० ॥

य एष नित्यं शरणस्थलात्मा
प्रसादलिंगार्पितमेव शब्दम् ।
स्वयं गृहीत्वा विविधोपदिष्टं
प्रसादभोगं कुरुते स्वभावात् ॥ ४१ ॥

ऐक्यात्मकोऽयं परिणामवस्तु
सदा महालिंगसमर्पितं हि ।
स्वभावसिद्धं निजभक्तियोगा-
न्निषेवते तृप्तिघनप्रसादम् ॥ ४२ ॥

एवं षडंगस्थलरूपतोऽसौ
स्वस्मिन् स्थिते षड्विधलिंगतत्त्वे ।
समर्पितं षड्विधवस्तुजातं
प्रसादरूपेण सदैव भुङ्क्ते ॥ ४३ ॥

आचारायार्पिता पृथ्वी गुरोरापः समर्पिताः ।
शिवाय चार्पितं तेजश्चराय मरुदर्पितः ।
प्रसादायार्पितं व्योम जीवात्मा महतेऽर्पितः ॥ ४४ ॥

आचारे दिव्यलिंगे निरुपमनिजभक्तस्थलांगैक्यभाजि
घ्राणाख्ये चित्तहस्तेन च घनसुखहेतौ क्रियाशक्तियुक्ते ।
घ्रातव्यं द्रव्यमप्यर्पणविषयविधानोपदिष्टं समर्प्य
प्रायः सद्भक्तिपूर्णः स्वयमयमिह गन्धप्रसादं भजेत ॥ ४५ ॥

स्वांगे माहेश्वरात्मन्युपमसहजज्ञानशक्तिप्रयुक्ते
जिह्वास्ये सुप्रसिद्धे परतरगुरुलिंगाभिधे संस्थितेऽस्मिन् ।
निष्ठाभक्तिप्रभावप्रणिहितसुमहाबुद्धिहस्तेन विद्वान्
रस्यं द्रव्यं समर्प्य स्वयममलरसाख्यं प्रसादं भजेत ॥ ४६ ॥

योऽसौ नित्यं प्रसादिस्थलपरमपदप्राप्तदिव्यांगभाजि
स्वेच्छाशक्तिप्रयुक्ते दृशि जगति मुखे पाणिनाऽहंकृतेन ।
साक्षाल्लिंगे शिवाख्ये सविनयमवधानात्मताभक्तियुक्तो
द्रष्टव्यांशं समर्प्यार्पणविनिहितरूपप्रसादं भजेत ॥ ४७ ॥

संसक्ते प्राणलिंगिस्थलनिहितनिजांगे मनःपाणिनाऽसौ
लिंगे साक्षाच्चराख्ये त्वचि जगति मुखे ह्यादिशक्तिप्रयुक्ते ।
स्प्रष्टव्यं चार्पयित्वा स्वयमनुभवभक्तिप्रभावोपपन्नो
नित्यं स्पर्शप्रसादं निरतिशयसुखं तत्त्ववेत्ता भजेत ॥ ४८ ॥

लिंगे साक्षात्प्रसादे विमलशरणसंज्ञांगसंस्थापितेऽस्मिन्
श्रोतव्यं श्रोत्रवक्त्रे निखिलमिह पराशक्तियुक्ते समर्प्य ।
आनन्दाकारभक्तिस्फुटतरपरमज्ञानहस्तेन सोऽयं
शब्दाख्यं तत्प्रसादं स्वयमविरतमत्याश्रमस्थो भजेत ॥ ४९ ॥

ऐक्यांगं भाजि लिंगे महति हृदि मुखे चिन्महाशक्तियुक्ते
नित्यं भावेन हस्तेन च समरसभक्तिप्रसक्तः स्वयं सन्।
स्मर्तव्यं चार्पयित्वा विशदमतिरवश्यं सदैवार्पणीयं
तस्माल्लब्धं विशुद्धं घनतरपरिणामप्रसादं भजेत ॥ ५० ॥

अंगं च लिंगं च मुखं च हस्तो
भक्तिश्च शक्तिश्च तथार्पणं च।
प्रसाद इत्यष्टविधस्थलानि
प्रतिस्थलं षट्स्थलसंज्ञितानि ॥ ५१ ॥

अंगं च लिंगं च सदेव जातं
भक्तिश्च शक्तिश्च तथा चिदेव।
आनन्द एव स्वयमर्पणं च
प्रसादरूपञ्च भवेत् त्रितत्त्वम् ॥ ५२ ॥

सवितुःपदमंगं स्याद्भर्गपदं लिंगमेव सम्बन्धः।
धीमहिपदमित्येषा गायत्र्याहांगलिंगसम्बन्धम् ॥ ५३ ॥
जीवः सविता देवः परमो भर्गस्तदर्थकं वरणीयम्।
अनयोरैक्यं धीमहिपदमेषा प्राह जीवपरमैक्यम् ॥ ५४ ॥
अंगं जीवः परमो लिंगं सम्बन्ध एव तादात्म्यम्।
तद्वत् पदार्थरूपं प्रसादरूपं समर्पणं त्रिविधम् ॥ ५५ ॥
पदार्थरूपो जीवश्च प्रसादः परमो भवेत्।
समर्पणञ्च तादात्म्यमिति शैवी परा स्थितिः ॥ ५६ ॥
एकधा च त्रिधा षड्धा नवधा च प्रवर्तते।
स्वयमेव परं लिंगं न ततोऽन्यच्च किञ्चन ॥ ५७ ॥
नवलिंगान्यविज्ञाय तन्मुखान्यर्पणानि च।
कथं निर्लेपतामेति सर्वष्विन्द्रियकर्मसु ॥ ५८ ॥
लेपोऽज्ञं न जहेज्जातु तज्ज्ञं स्पृशति न क्वचित्।
सर्पिषा लिप्यते पाणी रसना नैव लिप्यते ॥ ५९ ॥

यथा कालिकया दृष्टौ सम्पृक्ताऽपि न लिप्यते।
पक्ष्मणोरन्तरा तारा तथा सम्यक् शिवात्मवित् ॥ ६० ॥
शरीरादिपदार्थांश्च दत्त्वा दानं समर्पणम्।
समर्प्य सोऽहमस्मीति दासोऽहंभाव उच्यते ॥ ६१ ॥
इन्द्रियादागतं किञ्चिद्यत्सुखं तच्छिवार्पितम्।
तत्प्रसादं तु भोक्तव्यं तदिन्द्रियमुखेन च ॥ ६२ ॥
येन गन्धरसौ रूपस्पर्शशब्दरतिक्रियाः।
एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते ॥ ६३ ॥
एवं लिंगार्ऽर्पितं सर्वमिति यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽश्नुते सकलान् भोगान् विपश्चिद् ब्रह्मणा सह ॥ ६४ ॥
लिंगदेही शिवात्मायं लिंगाचारो न लौकिकः।
सर्वं लिंगमयं रूपं लिंगेन सममश्नुते ॥ ६५ ॥
सर्वांगलिंगमेव स्यादन्नपानाद्यमर्पितम्।
प्रसादस्तृप्तिरेव स्यात् सर्वं लिंगमयत्वतः ॥ ६६ ॥
एतदर्पणसद्भावज्ञानं वेदान्तवाक्यजम्।
गुरूपदेशतः साध्यं नान्यथा शास्त्रकोटिभिः ॥ ६७ ॥
श्रीलिंगार्पणसद्भावमवोचं परमार्थतः।
अर्पितं च प्रसादं च भोगं निर्लेपतां प्रति ॥ ६८ ॥
एतद्यो वेद सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरति प्रभुः।
शिवसिद्धान्तकं तन्त्रं शिवाद्वैतं शिवं पदम् ॥ ६९ ॥

इति वातुलोत्तरतन्त्रे शिवानुभवसूत्रे षट्स्थलनिर्णये
लिङ्गार्पणसद्भावो नाम सप्तमाधिकरणम् ॥

अष्टमाधिकरणे क्रियाविश्रान्तिः

क्रियाविश्रान्तिमाचक्षे साक्षादीश्वरभाषिताम् ।
देव्यै रहस्यरूपेण तामिदानीं समासतः ॥ १ ॥
अस्यात्मनः क्रियाः सर्वा लिंगार्पिततया स्थिताः ।
स्वस्मिन्नेव स्वयं यान्ति विश्रान्तिं सुखलक्षणाम् ॥ २ ॥
प्रोच्यते परमार्थज्ञैः क्रियाविश्रान्तिरित्यतः ।
क्रियाविश्रान्तिरेवात्र सम्यग्ज्ञानं न संशयः ॥ ३ ॥
सम्यग्ज्ञानमहं साक्षाच्छिव एवेति वेदनम् ।
वेदनेनैव तेनायमाप्तकामः सुखी भवेत् ॥ ४ ॥
आप्तकामस्य सुखिनः कामाचारा बहिर्मुखाः ।
प्रवृत्ता लौकिकाः सर्वे प्रययुर्नाशमात्मनि ॥ ५ ॥
प्रनष्टेष्वेषु सर्वेषु स्वेच्छाचारेण यत्कृतम् ।
तच्छिवार्चनमेव स्याद्यद् भुक्तं तच्छिवार्पितम् ॥ ६ ॥
शिवरूपतया सर्वं यस्य भाति स्वरूपतः ।
स्वेच्छाचारसमाचारः तस्य चार्चा हि शूलिनः ॥ ७ ॥
एवमर्चनमीशस्य स्वेच्छाचारनिबन्धना ।
भवत्येव न सन्देहः शिवोऽहमिति वेदनात् ॥ ८ ॥
अहमिति शिव एव सत्यचिद्घनः
स्फुरति तथा पृथगस्ति नैव वस्तु ।
इदमिति वपुषा न तेन बन्धनं
नहि शरणस्य विमोचनं न किञ्चित् ॥ ९ ॥
बन्धमुक्त्योरभावे हि भक्तिरुक्ता निरर्गला ।
न बन्धे मोचने चापि न तयोश्च समुच्चये ॥ १० ॥

बन्धे सति विमुक्तिः स्यात् सत्यां मुक्तौ च बन्धनम् ।
अन्यस्यापगमादन्य आगमिष्यति केनचित् ॥ ११ ॥
परस्परानुबन्धेन वर्तेते बन्धमोचने ।
तस्मात्तयोरभावे तु भक्तिरुक्ता निरंकुशा ॥ १२ ॥
न योगो न तपो नार्चाक्रमः कोऽपि हि विद्यते ।
अमाये शिवमार्गेऽस्मिन् भक्तिरेका प्रशस्यते ॥ १३ ॥
भक्तिः सत्त्वगुणस्था रजोगुणाढ्या तमोगुणप्रथिता ।
स्वातन्त्र्येण सलीला प्रवर्तते शिवसमर्पिता शुद्धा ॥ १४ ॥
सत्त्वरजस्तमसामप्यतिरिक्ता भक्तिरेभिरुपपन्ना ।
स्वविशुद्धतया तानप्येकाकारान् करोति हि त्रिगुणान् ॥ १५ ॥
न राजसो गुणो भक्तौ परायां नैव तामसः ।
न सात्त्विकगुणोऽपि स्यात् स्वगुणैरगुणैव सा ॥ १६ ॥
रौप्यं ताम्रमयोधनं त्रितयमेतत्सात्त्विकं राजसं
प्रोक्तं तामसमेषु च त्रिषु विलेपं संश्रितोऽपि स्वयम् ।
कुर्यात्सिद्धरसः स्वनिर्मलतया लोहत्रयं तद्यथा
स्वर्णं षोडशवर्णपूर्णमकरोद्भक्तिस्तथा त्रीन् गुणान् ॥ १७ ॥
यथा सिद्धरसो लोहत्रयं चैकप्रकारतः ।
कुर्यात् स्वर्णं तथा भक्तिरतिः शैवं गुणत्रयम् ॥ १८ ॥
कस्तूरीहिमकुंकुमानि हि तमस्सत्त्वंरजोवर्णतः
कृष्णं शुभ्रमथारुणं यदुपरि प्राप्ता शिवैकात्मिका ।
भक्तिः स्वात्मगुणात्मिका जयति तत्सद्वासनारूपिणी
नैर्गुण्ये परमे पदे किमिह वक्ष्ये भक्तियोगस्थितिम् ॥ १९ ॥
अहं कर्ता समस्तस्य धर्माधर्मस्य कर्मणः ।
इत्यनेनाभिमानेन कर्मकाण्डोऽयमुच्यते ॥ २० ॥
नाहं कर्ताऽस्य कर्तृत्वं नैव साक्षी स्वभावतः ।
इत्यनेनाभिमानेन ज्ञानकाण्डोऽयमुच्यते ॥ २१ ॥

न कर्ताऽहं न साक्षी च शिव एवेति कर्मणोः ।
द्वयाभिमानराहित्यं भक्तिकाण्डोऽयमुच्यते ॥ २२ ॥

शुक्तिः कर्मपदं सरोरुहदलं ज्ञानं पदं भाक्तिकं
तप्तायोधनमेषु संसृतिपयोबिन्दुः स्थितस्तत्क्रमात् ।
साफल्यं विफलत्वमाकृतितया प्रायेण नाशं गतो
नाम्नाप्येव शिवात्मिकां परतरां भक्तिं किमाचक्ष्महे ॥ २३ ॥

स्वच्छन्दाचारवर्तिन्या भक्त्या यत्कृतमर्चनम् ।
यद्भुक्तमर्पितं लिंगे मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ २४ ॥

गन्धपुष्पादिगन्धस्य ग्रहणं यत्तदर्चनम् ।
षड्रसास्वादनं यत्तन्नैवेद्याय प्रकल्पितम् ॥ २५ ॥

इन्द्रियाकारभावेन विषयाकारतः स्वयम् ।
क्रीडया देवता भुङ्क्ते स्वत इत्यर्चनं मतम् ॥ २६ ॥

शिलालेखा स्थलीलेखा जललेखा त्रिधा क्रमात् ।
शुभाशुभात्मिका कर्मज्ञानभक्तिक्रिया मता ॥ २७ ॥

नैव लोप्या शिलालेखा स्थलीलेखा च लुप्यते ।
नादौ लेखायते चान्ते जललेखा न लुप्यते ॥ २८ ॥

शुभकर्माशुभं कर्म ज्ञानकर्म प्रसादकम् ।
एतच्चतुर्विधं कर्म तत्तत्फलविधायकम् ॥ २९ ।

पापान्नरकः पुण्यात् स्वर्गस्ताभ्यां विनैव कर्मभ्याम् ।
ज्ञानान्मोक्षस्तैस्त्रिभिरेव विना स्यात् प्रसादतो भक्तिः ॥३०॥

प्रसादादेव सा भक्तिः प्रसादो भक्तिसम्भवः ।
यथैवांकुरतो बीजं बीजतो वा यथांकुरः ॥ ३१ ॥

ज्ञानं ब्रूते भक्तिः कुरुते शिवजीवयोः पृथग्भावम् ।
तेन ज्ञानं पूर्वं भक्तिस्तूत्तरतमा विभाति ततः ॥ ३२ ॥

आत्मानं च पृथक् कृत्वा प्रेरितारं तथा पृथक् ।
असौ जुष्टस्ततस्तेन ह्यमतत्वाय कल्पते ॥ ३३ ॥

आत्मोपासक ईश्वरः स्वयमुपास्यः सर्वदैवेत्यसौ
भक्तिर्भोगकरी करोति शिवमात्मानं च कृत्वा पृथक् ।
यत्तत्क्षीरघृतारणीहुतवहस्रोतोऽम्बुवत् संयुतं
जीवेशैक्यपदं विभज्य परतोऽप्यस्यामृतत्वाय हि ॥ ३४ ॥

नेत्रे चाल्पविलोकिते सति पृथक्त्वं याति यत्तच्चिरं
रूपं वस्तु तदेकमेव पुरुषेणाश्चर्यसंस्पृग्धिया ।
कृत्वा भूय उभे समे यदि दृशौ तेनेक्षिते सत्यभूद्
रूपं पूर्ववदेकमेव विमलं चैकं स्वभावेन हि ॥ ३५ ॥

एवमद्वैतभक्त्यैव प्रसादः सर्वतोमुखः ।
प्रसिद्ध्यति ततः सर्वमात्मरूपेण दृश्यते ॥ ३६ ॥

कर्ता कारयिता कर्म करणं कार्यमेव च ।
सर्वमात्मतया भाति प्रसादात् पारमेश्वरात् ॥ ३७ ॥

भोक्ता भोजयिता भोगो भोगोपकरणानि च ।
सर्वमात्मतया भाति प्रसादात् पारमेश्वरात् ॥ ३८ ॥

ग्राहकश्च तथा ग्राह्यं ग्रहणं सर्वतोमुखम् ।
सर्वमात्मतया भाति प्रसादात् पारमेश्वरात् ॥ ३९ ॥

जीवात्मा परमात्मा च तयोर्भेदश्च भेदकः ।
सर्वमात्मतया भाति प्रसादात् पारमेश्वरात् ॥ ४० ॥

शरीरमिन्द्रियं प्राणा मनो बुद्धिरहङ्कृतिः ।
सर्वमात्मतया भाति प्रसादात् पारमेश्वरात् ॥ ४१ ॥

विधयश्च निषेधाश्च निषिद्धकरणान्यपि ।
सर्वमात्मतया भाति प्रसादात् पारमेश्वरात् ॥ ४२ ॥

कामक्रोधादयः सर्वे तथा शान्त्यादयोऽपि च ।
सर्वमात्मतया भाति प्रसादात् पारमेश्वरात् ॥ ४३ ॥

तस्मादद्वैतगां भक्तिमाश्रयेत् सर्वसिद्धिदाम् ।
न च द्वैतात्मिकां भक्तिं क्लेशहेतुप्रदायिनीम् ॥ ४४ ॥

अन्योन्यप्रार्थकं द्वैतं समसंयोगयोस्तयोः ।
कः कं भजति भक्त्या सा भक्तिरद्वैतगा नहि ॥ ४५ ॥

अद्वैतपदरूढा या भक्तिरद्वैतलक्षणा ।
सैवाद्वैताभिधा भक्तिरन्या केवलकल्पिता ॥ ४६ ॥

द्वैतभक्त्या हि संसारवर्धनं भिन्नरूपतः ।
अभिन्नरूपतोऽद्वैतभक्त्या संसारनाशनम् ॥ ४७ ॥

द्वैतभक्तिः प्रपञ्चाख्या केनचित् कल्पिता मृषा ।
अद्वैतभक्तिरचला निर्विकल्पा निरञ्जना ॥ ४८ ॥

द्वैतभक्तिनिवृत्तौ हि साक्षादद्वैतलक्षणा ।
भक्तिर्गरीयसी भाति निजर्वाणनिरूपिणी ॥ ४९ ॥

अद्वैतभक्तियुक्तस्य योगिनः सकलक्रिया ।
आस्ते दग्धपटन्यायात् क्रियामात्रा हि न क्रिया ॥ ५० ॥

क्रियामात्रा क्रिया नैव प्रतिबन्धाय देहिनाम् ।
केवला निर्मला शुद्धा फलकामविवर्जिता ॥ ५१ ॥

फलकामप्रयुक्ता हि क्रिया सा प्रतिबध्यते ।
क्रियामात्रा न बन्धायेत्यत्राश्चर्यं किमुच्यताम् ॥ ५२ ॥

फलकामतया कर्मकरणं प्रतिबध्यते ।
न कर्ममात्रकरणं तस्मात् कर्मफलं त्यजेत् ।
त्यक्ते कर्मफलेऽप्यस्य विलासो नैव बाधते ॥ ५३ ॥

यथा चित्रपटस्त्रीणां विलासो नैव बाधते ।
तथाऽद्वैतक्रियाणां च विलासो नैव बाधते ॥ ५४ ॥

न प्ररोहन्ति बीजानि यथा भ्रष्टानि भूतले ।
अद्वैतभक्तियुक्तानि कर्माणि च तथैव हि ॥ ५५ ॥

यथा वन्ध्याः स्त्रियो लोके फलाय न कदाचन ।
तथाऽद्वैतक्रिया लोके फलाय न कदाचन ॥ ५६ ॥

वन्ध्या सकामा यदि पुंसि सङ्गमं
करोत्यकामाऽपि फलं यथा नहि।
भक्तिः सदा सङ्गममीश्वरे मुदा
करोत्यपि स्यात् फलमेव नेतरत् ॥ ५७ ॥

निष्फला निष्फलाः नैव सफला सफला नहि।
क्रिया अद्वैतसिद्धान्तभक्तियोगसमाश्रिताः ॥ ५८ ॥
अद्वैतभक्तिरूपेण दृश्यन्ते तत्प्रभावतः।
नैष्फल्यमिति सम्भ्रान्तिः साफल्यमिति विभ्रमः ॥ ५९ ॥
न नैष्फल्यं न साफल्यं क्रियाणामस्ति वस्तुतः।
समौ निम्नोन्नतौ नाभिकुचे चित्रपटे स्त्रियः ॥ ६० ॥
क्रियानैष्फल्यसाफल्ये सत्यद्वैते तथा समे।
यथा नानाविधा नद्यो नानाविधजला अपि ॥
स्यन्दमाना इमाः सर्वा अकूपारं समाश्रिताः ॥ ६१ ॥
तद्रूपेणैव दृश्यन्ते नामरूपे विहाय च।
तथाद्वैतं समाश्रित्य क्रिया नानाविधा अपि ॥ ६२ ॥
अद्वैतभक्तिरूपेण दृश्यन्ते भक्तियोगतः।
क्रियाकारस्वरूपेण प्रतीताऽप्येव सर्वथा ॥ ६३ ॥
न केवलक्रिया ह्यस्य लीलामात्रा स्वभावतः।
अर्चनार्पणरूपेण तत्सर्वं तु प्रतीयते ॥ ६४ ॥
लीलया सकलाकारा स्वयं सा भक्तिदेवता।
क्रीडन्ती स्वात्मनात्मानं भुङ्क्ते चैतच्छिवार्पितम ॥ ६५ ॥
अनुरागपरा भक्तिर्विषयेषु विशुद्धधीर्विरागपरा।
अनुरागेण विरागेण सन्ततं भक्तिरेव निर्लेपा ॥ ६६ ॥
अन्तर्लेपबहिर्लेपत्यागग्रहणयोः समा।
विषयाणां विषयिणामनुरागविरागिणाम् ॥ ६७ ॥
तस्माद्भक्तिर्न गृह्णाति न जहाति किमप्यसौ।
अनुरागेण यद्वस्तु विरागेणापि शाम्भवी ॥ ६८ ॥

तथा तमःप्रकाशाभ्यां युक्तोऽप्याकाश एतयोः ।
निर्लेपतः स शुद्धात्मा तथा ताभ्यां तयोश्च सा ॥ ६९ ॥

तमोज्योत्स्नाप्रवृत्तिर्हि रात्रावेव न चाह्नि ।
पुण्यपापोभयं कर्ममते भक्तिमते कुतः ॥ ७० ॥

अह्न्यातप एवास्ते तमो ज्योत्स्नाविलक्षणे ।
तथा भक्तिपदे शैवं पुण्यपापविलक्षणे ॥ ७१ ॥

अह्न्यहस्करो भाति भर्गो भक्तिपदे तयोः ।
प्रभावो ह्यातपस्यैवमित्येतदुभयं मतम् ॥ ७२ ॥

ज्ञानैकलक्षणं शैवमित्येतदुभयं मतम् ।
ज्ञानैकलक्षणं शैवमुष्णलक्षण आतपः ॥ ७३ ॥

तमश्चन्द्रिकयोः सख्यमुभयोश्चैक्यलक्षणात् ।
रात्रौ व्यवस्थितत्वाच्च तद्वदज्ञानलक्षणात् ॥ ७४ ॥

कर्मण्येव स्थितत्वाच्च सख्यं स्यात् पापपुण्ययोः ।
तस्माद् भक्तिपदे पापपुण्ययोर्नैव वर्तते ॥ ७५ ॥

अत एव परायां तु भक्तौ न च शुभाशुभे ।
ज्ञानं प्रसादादेव स्यादित्येषा शाम्भवी स्थितिः ॥ ७६ ॥

ज्ञानादेव हि मोक्षः स्यान्मोक्षादुपरि शाम्भवी ।
भक्तिर्गुरुतरा भाति स्वतन्त्रा निजलीलया ॥ ७७ ॥

धर्मादिपुरुषार्थाणां चतुर्णां परतः पुरा ।
पञ्चमः पुरुषार्थो हि भक्तिः शैवी सनातनी ॥ ७८ ॥

लोकयोरुभयोरैहिकामुष्मिकपदार्थयोः ।
गमागमौ विनैवास्ते भक्तिः सम्पूर्णवैभवा ॥ ७९ ॥

भावानुरूपफलदा स्वाश्रितानां फलैषिणाम् ।
उत्तरोत्तररूपेण भक्तिः पूर्णा निरुत्तरा ॥ ८० ॥

केचित्प्राणैः सह शिवपदं केचिदात्मीयकार्यैः
केचिद् दारैर्निजतनुभवैर्मन्दिरैर्बन्धुवर्गैः ।
ग्रामैर्देशैः सह परिजनैः केचिदन्ये क्रमेण
त्यक्त्वा चैतत्सकलमपि यान्ति स्वयं चैव भक्ताः ॥ ८१ ॥

प्राणादिवस्तुविषयेष्वनुरागयुक्ता
भक्ताः प्रयान्ति कतिभिः सह तैः शिवैक्यम् ।
केचिद्विरागनिरता विषयेषु तेषु
त्यक्त्वा च तान् शिवपदं स्वयमेव यान्ति ॥ ८२ ॥

भक्तिरेव परमार्थदायिनी भक्तिरेव परतत्त्ववेदिनी ।
भक्तिरेव भवदोषहारिणी भक्तिरेव शिवभावकारिणी ॥ ८३ ॥

अतः परं भक्तिविलासवैभवे
सदा शिवाद्वैतपरायणः स्वयम् ।
प्रसादमासाद्य निजैक्यसौख्यदं
स्वयमेव गायन् विचरेत् स्वलीलया ॥ ८४ ॥

नाहमनात्मा पश्चात्कोऽहं योऽहं पदस्थ आत्मा साक्षी ।
सोऽहं तत्पतिशिवदासोऽहं दासोऽहमिति चरेदुपरि ॥ ८५ ॥

इति परमरहस्यं वेदवेदान्तसारं
हृतभवभयबाधं षट्स्थलब्रह्मबोधम् ।
गुरुशिवपदभक्त्या प्राप्तविद्याय देयं
विरहितघनभक्तिश्रेयसे नैव देयम् ॥ ८६ ॥

नाशिष्येभ्यश्चैतेभ्यो वा नाभक्तेभ्यः कदाचन ।
ग्राहयेदीदृशानर्थानिति वेदानुशासनम् ॥ ८७ ॥

क्रियाविश्रान्तिरित्येवं मया संसारनाशिनी ।
अद्वैतभक्तिनिर्वाणनिष्ठाकाष्ठा समीरिता ॥ ८८ ॥

श्रीमदैपुरसोमेशलिङ्गायालिङ्गरूपिणे ।
लिंगांगैक्यस्वरूपाय नमस्ते लिंगमूर्तये ॥ ८९ ॥

नमश्शब्द उमा साक्षाच्छिवशब्दः शिवः स्वयम् ।
अयशब्दस्तयोर्योगः सोमतत्त्वमुपास्महे ।। ६० ।।
अवाच्यात्मस्वरूपाय शिवभावप्रदायिने ।
नमः सद्गुरुनाथाय षट्स्थलब्रह्ममूर्तये ।। ६१ ।।
स्वानुभूतिविभवानुगाहिना
मायिदेवविभुना महात्मना ।
श्रीशिवानुभवसूत्रमुत्तरं
तन्त्रमुक्तमतिशोभनं परम् ।। ६२ ।।
एतद्यो वेद सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरति प्रभुः ।
शिवसिद्धान्तकं तन्त्रं शिवाद्वैतं शिवं पदम् ।। ६३ ।।

इति श्रीवातुलोत्तरतन्त्रे शिवानुभवसूत्रे षट्स्थलनिर्णये क्रियाविश्रान्तिर्नामाष्टमाधिकरणं सम्पूर्णम् ।।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।।

निदेशिका

विषयाः		पृष्ठाङ्काः
प्रथमाधिकरणे पारम्पर्यक्रमः	....	१
द्वितीयाधिकरणे स्थलनिर्देशः	....	५
तृतीयाधिकरणे लिङ्गस्थलनिरूपणम्	...	८
चतुर्थाधिकरणे अङ्गस्थलनिरूपणम्	...	१३
पञ्चमाधिकरणे लिङ्गाङ्गसंयोगविधिः	...	१८
षष्ठाधिकरणे सर्वाङ्गलिङ्गसाहित्यम्	...	२६
सप्तमाधिकरणे अर्पणसद्भाव	...	३१
अष्टमाधिकरणे क्रियाविश्रान्तिः	...	३८

ॐ सच्चिदानन्दाय नमः

अथ

वातुलतन्त्रम्

प्रथमः पटलः

कैलासशिखरे रम्ये नानारत्नोपशोभिते ।
नानाद्रुमलताकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते ॥ १ ॥

तत्र सिंहासनासीनं श्रीकण्ठं त्रिदशेश्वरम् ।
प्रणम्य चरणौ तस्य स्कन्दो वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

देवदेव जगन्नाथ सर्वज्ञ त्रिपुरान्तक ।
स्थित्युत्पत्तिलयेशान प्रणतार्तिहर प्रभो ॥ ३ ॥

सर्वलोकहितार्थाय योगिनां रक्षणाय च ।
मन्त्रतन्त्रं महादेव त्वया प्रोक्तं तु विस्तरात् ॥ ४ ॥

पुंसामनुग्रहार्थाय ज्ञानिनां मुक्तिकारणम् ।
शिवज्ञानं परं गुह्यं संक्षेपाद् वद मे प्रभो ॥ ५ ॥

ईश्वर उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि यत्त्वया परिचोदितम् ।
एतत्सर्वं समासेन श्रूयतामिह षण्मुख ॥ ६ ॥

साधकानां हितार्थाय भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
वातुलाख्ये महातन्त्रे दध्नौ घृतमिवोद्धृतम् ॥ ७ ॥

सारात्सारं समुद्धृत्य शुद्धाख्यं तन्त्रमुत्तमम् ।
सहस्रग्रन्थसंयुक्तं सर्वज्ञानसमुच्चयम् ॥ ८ ॥

गुह्याद् गुह्यमिदं तन्त्रं सर्वशास्त्रसमुद्धृतम् ।
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं चैव सारात् सारं महोदयम् ॥ ९ ॥

अप्रकाश्यमिदं तन्त्रं रहस्यमतिदुर्लभम् ।
शिवज्ञानं महासेन संक्षेपाद् वक्ष्यतेऽधुना ॥ १० ॥
प्रथमस्तत्त्वभेदश्च द्वितीयो वर्णभेदकः ।
तृतीयश्चक्रभेदश्च चतुर्थो वर्णभेदकः ॥ ११ ॥
पञ्चमो मन्त्रभेदस्तु षष्ठः प्रणवभेदकः ।
सप्तमो ब्रह्मभेदश्च अङ्गभेदस्तु चाष्टमः ॥ १२ ॥
नवमं मन्त्रजातं तु दशमं कीलकं तथा ।
एते त्वै दशभेदास्तु कीर्तिताश्च क्रमेण वै ॥ १३ ॥
एतेषामेव पूर्वं तु तत्त्वभेदं वदाम्यहम् ।
तत्त्वं तु त्रिविधं ज्ञेयं तस्य भेदं शृणुष्व हि ॥ १४ ॥
शिवं सदाशिवं चैव महेशं त्रिविधं स्मृतम् ।
शिवतत्त्वं महासेन निष्कलं चेति कीर्तितम् ॥ १५ ॥
सकलं निष्कलं चैव सदाशिवमिति स्मृतम् ।
महेशं सकलं विद्यात् त्रिविधं तद् भवेद्यथा ॥ १६ ॥
शिवमेकं विजानीयात् सदाख्यं पञ्चधा भवेत् ।
महेशं तु महासेन पञ्चविंशतिभेदकम् ॥ १७ ॥
एतेषां तत्त्वसंयुक्तमेकत्रिंशदिति स्मृतम् ।
शिवस्य लक्षणं वक्ष्ये समासाच्छृणु षण्मुख ॥ १८ ॥
शिवं परात्परं सूक्ष्मं नित्यं सर्वगताव्ययम् ।
अनिर्द्धतमनौपम्यमप्रमाणमनामयम् ॥ १९ ॥
शुद्धत्वाच्छिवमुद्दिष्टं परार्द्धूर्ध्वं परात्परम् ।
व्योमातीतं च सूक्ष्मं हि नित्यं कारणकारणम् ॥ २० ॥
व्याप्तं सर्वगतं प्रोक्तमक्षीणादव्ययं भवेत् ।
अमलानिर्द्धतं ज्ञेयमसादृश्यादनौपमम् ॥ २१ ॥
प्रमाणाद्यतिरिक्तत्वादप्रमेयमिति स्मृतम् ।
निर्गुणात्वाद् विशेषेण चानामयमिति स्मृतम् ॥ २२ ॥
इत्येतैर्लक्षणैर्युक्तं शिवरूपमिति स्मृतम् ।
सृष्ट्यर्थं सर्वतत्त्वानां लोकस्योत्पत्तिकारणम् ॥ २३ ॥

योगिनामुपकाराय स्वेच्छया चिन्त्यते शिवः ।
तच्छिवे तु पराशक्तिः सहस्रांशेन जायते ॥ २४ ॥
तच्छक्तेस्तु सहस्रांशादादिशक्तिसमुद्भवः ।
आदिशक्तिसहस्रांशाद् इच्छाशक्तिसमुद्भवः ॥ २५ ॥
इच्छाशक्तिसहस्रांशाद् ज्ञानशक्तिसमुद्भवः ।
ज्ञानशक्तिसहस्रांशात् क्रियाशक्तिसमुद्भवः ॥ २६ ॥
एता वै शक्तयः पञ्च निष्कलाश्चेति कीर्तिताः ।
शिवसृष्टिरियं प्रोक्ता शक्तीनां सृष्टिरुच्यते ॥ २७ ॥

योगिनां च यतीनाञ्च ज्ञानिनां मन्त्रिणां तथा ।
ध्यानपूजानिमित्ताय निष्कलं सकलं भवेत् ॥ २८ ॥
तद्रूपं हि समासेन सादाख्यमिति कीर्तितम् ।
सादाख्यं पञ्चधा प्रोक्तं तेषां लक्षणमुच्यते ॥ २९ ॥

पराशक्त्यादिशक्त्योश्च सादाख्यस्य समुद्भवः ।
प्रथमं शिवसादाख्यममूर्तं तु द्वितीयकम् ॥ ३० ॥

तृतीयं मूर्तसादाख्यं चतुर्थं कर्तृनामकम् ।
पञ्चमं कर्मसादाख्यमुक्तं सादाख्यपञ्चकम् ॥ ३१ ॥

सदाशिवस्तथेशश्च ब्रह्मा वै चेश्वरः स्मृतः ।
ईशानश्चेति पञ्चैते तत्त्वभेदाः प्रकीर्तिताः ॥ ३२ ॥
शिव सदाशिवं ज्ञेयममूर्तश्चेश उच्यते ।
मूर्तं ब्रह्मेति विज्ञेयं कर्तृ चैवेश्वरः स्मृतः ॥ ३३ ॥

कर्मेशान इति प्रोक्त इत्येवं द्विविधं स्मृतम् ।
परात्परतरञ्चैव सूक्ष्मतः सूक्ष्ममेव च ॥ ३४ ॥
स्थूलसूक्ष्मक्रमेणैव शिवादिः परिलक्ष्यते ।
[तदेतत्त्रिविधं स्थूलं सूक्ष्मतत्त्वं ततः परम् ॥ ३५ ॥

अस्मदाद्यमनिर्देश्यं स्थूलं सूक्ष्मञ्च च योगिनः ।
ततः परं तु यन्नित्यं ज्ञानमानन्दमव्ययम् ॥ ३६ ॥

तन्निष्ठैस्तत्परैर्भक्त्या दृश्यं तद्रूपमास्तिकैः] ।
एतेषु पञ्चतत्त्वेषु विशेषमधुनोच्यते ।। ३७ ।।
तत्त्वमूर्तिप्रभावश्च त्रिविधो विद्यते क्रमात् ।
शिवश्च तत्त्वमित्युक्तं मूर्तिश्चैव महेश्वरः ।। ३८ ।।
तयोर्योगेन यद्रूपं तद्रूपं भावसंज्ञकम् ।
भावं सादाख्यमित्युक्तमित्येवं परिकल्पितम् ।। ३९ ।।
सन्ततं शिवभावत्वात् सादाख्यमिति कीर्तितम् ।
निष्कलं तत्त्वमित्युक्तं सकलं मूर्तिरीरिता ।। ४० ।।
सकलं निष्कलं चैव प्रभावमिति कीर्तितम् ।
देही निष्कलमित्युक्तं देहं सकलमीरितम् ।। ४१ ।।
देहिदेहस्य सम्बन्धमेव रूपमिति स्मृतम् ।
सर्वेषां ध्यानपूजार्थं सकलं निष्कलं भवेत् ।। ४२ ।।
एवं ज्ञात्वा विशेषेण सर्वकर्म समाचरेत् ।
पञ्चसादाख्यतत्त्वानामुद्भवं हि पृथक् पृथक् ।। ४३ ।।
तेषां रूपञ्च वर्णञ्च समासच्छृणु षण्मुख ।
शान्त्यतीता पराशक्तिस्तस्याः पर्यायवाचकः ।। ४४ ।।
पराशक्तेर्दशांशेन शिवसादाख्य(मुद्भवम्)समुद्भवः ।
पराशक्त्युद्भवत्वाच्च शुद्धत्वाच्छिवमीरितम् ।। ४५ ।।
तद्रूपं सूक्ष्मरूपेण ज्योतीरूपमिति स्मृतम् ।
विद्युद्रूपमिवाकाशे प्रत्यक्षं सर्वतो मुखम् ।। ४६ ।।
शिवतत्त्वमिति प्रोक्तं तत्त्वानामखिलालयम् ।
शिवसादाख्यमित्युक्तममूर्तं पु ततः शृणु ।। ४७ ।।
शान्तिरेवादिशक्तिश्च तस्याः पर्यायवाचकः ।
आदिशक्तिदशांशेन ह्यमूर्तस्य समुद्भवः ।। ४८ ।।
आदिशक्तेरमूर्तत्वादमूर्तं चेति कीर्तितम् ।
अमूर्तत्वात् कलाहीनं तद्रूपं लिङ्गवद्भवेत् ।। ४९ ।।

सूर्यकोटिप्रतीकाशं ज्योतिस्तम्भाकृति स्थितम् ।
तस्याभ्यन्तर्गता मूर्तिरमूर्तादिरिहोच्यते ॥ ५० ॥
एतद्वै दिव्यल्लिङ्गं तु मूलस्तम्भमिहोच्यते ।
लिङ्गात् सर्वं समुत्पन्नं लयं तस्मिन् प्रकीर्तितम् ॥ ५१ ॥

सृष्टिसंहारमेवोक्वं लिङ्गनाम्ना त्विहोच्यते ।
अमूर्तमेवमाख्यातं समूर्तं तु ततः श्रृणु ॥ ५२ ॥

इच्छाशक्तिश्च विद्या च तस्याः पर्यायवाचकः ।
तच्छक्तेस्तु दशांशेन ज्योतीरूपमिहोच्यते ॥ ५३ ॥
इच्छाशक्तेर्गुणत्वाच्च तस्मान्मूर्तिरुदाहृता ।
मूर्तत्वाच्च कलायुक्तं रूपं चेति प्रकीर्तितम् ॥ ५४ ॥

ज्वालाग्निसदृशप्रख्या दिव्यलिङ्गाकृतिर्भवेत् ।
तस्योर्ध्वांशकभागे तु चैकवक्त्रसमन्वितम् ॥ ५५ ॥
त्रिनेत्रं चाऽऽस्वदनं सर्वावयवसंयुतम् ।
कृष्णापरशुहस्तञ्च वराभयचतुर्भुजम् ॥ ५६ ॥
एवं लक्षणसंयुक्तं लिङ्गमूर्तमुदाहृतम् ।
एकमेकासनोपेतं दिव्यलिङ्गाकृतिर्भवेत् ॥ ५७ ॥

मूर्तसादाख्यमित्युक्तं कर्तृसादाख्यमुच्यते ।
ज्ञानञ्चैव प्रतिष्ठा च तस्याः पर्यायवाचकः ॥ ५८ ॥
ज्ञानशक्तिदशांशेन कर्तृसादाख्यमुद्भवः ।
ज्ञानकर्तृस्वभावत्वात् कर्तृनामेति कीर्तितम् ॥ ५९ ॥
ज्ञानं हि शुद्धरूपत्वात् स्फटिकाभासमुच्यते ।
दिव्यलिङ्गं महास्थूलं महादीर्घतयान्वितम् ॥ ६० ॥

तस्य मध्ये स्थिता मूर्तिरीश्वरः सर्वकारणम् ।
(पञ्चमूर्धचतुर्वक्त्रं नेत्रैर्द्वादशभिर्युतम्)
चतुर्मूर्धचतुर्वक्त्रं नेत्रद्वादशसंयुतम् ॥ ६१ ॥

चतुरास्यं चतुर्वर्णं वसुश्रोत्रसमन्वितम् ।
अष्टहस्तं द्विपादञ्च सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ ६२ ॥

शूलं परशुखड्गञ्च अभयं दक्षिणे करे।
पाशं नागञ्च घण्टां च वरदं वामहस्तके॥ ६३॥
सर्वावयवसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम्।
एवं तमीश्वरं विद्यात् कर्तृसादाख्यालिङ्गकम्॥ ६४॥
कर्तृसादाख्यमित्युक्तं कर्मसादाख्यमुच्यते।
निवृत्तिः स्यात् क्रियाशक्तिस्तस्याः पर्यायवाचकः॥ ६५॥
क्रियाशक्तिदशांशेन कर्मसादाख्यमुद्भवम् (समुद्भवः)।
क्रिया कर्मेति विज्ञेया तस्मात्कर्मेति नामतः॥ ६६।
लिङ्गपीठप्रकारेण कर्मसादाख्यलक्षणम्।
नादो लिङ्गमिति ज्ञेयं बिन्दुः पीठमुदाहृयम्॥ ६७॥
बिन्दुनादयुतं रूपं लिङ्गाकारमिति स्मृतम्।
चत्वारि कर्तृरूपाणि केवलं नादमीरितम्॥ ६८॥
लिङ्गं शिव इति ज्ञेयं पीठं शक्तिरुदाहृता।
योनिलिङ्गप्रकारेण जगत्सृष्टचर्थकारणम्॥ ६९॥
तथा संयोगभावेन कर्मरूपमुदाहृतम्।
बिन्दुमध्यगतो नादो नादमध्ये तु मूर्तयः॥ ७०॥
मूर्तिमध्यगतं तत्त्वं तत्त्वमध्यगतः शिवः।
एतच्छिवमयं लिङ्गं सर्वतत्त्वालयं विदुः॥ ७१॥
लिङ्गे तु जायते सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्।
तस्माद् लिङ्गं विशेषेण कर्मरूपमुदाहृतम्॥ ७२॥
कर्मोदये च सृष्टिः स्यात् कर्मान्ते संहृतिर्भवेत्।
एतत्कर्मेशरूपं तु सृष्टिस्थितिलयावहम्॥ ७३॥
पञ्चसादाख्ययोगेन कर्मसादाख्यमुच्यते।
शिवसादं विशेषेण शिवरूपं समाश्रितम्॥ ७४॥
अमूर्तं तु महासेन शिवसादाख्यमाश्रितम्।
मूर्तरूपं विशेषेण अमूर्तादिसमाश्रितम्॥ ७५॥
कर्तृसादाख्यमेवं हि समूर्तादिसमाश्रितम्।
कर्मरूपं क्रमेणैव कर्तृरूपं समाश्रितम॥ ७६॥

अनेनैव प्रकारेण चैकैकं तु समाश्रितम् ।
तस्मात् कर्मेशरूपं तु पञ्चतत्त्वाश्रितं विदुः ॥ ७७ ॥
पञ्चतत्त्वात्मक ज्ञेयं सर्वाधारं समाश्रितम् ।
एतद्वै मूर्तिपिण्डत्वात् पिण्डकायमिति स्मृतम् ॥ ७८ ॥
पिण्डस्थं पिण्डमध्यस्थं पिण्डेन तु पुटीकृतम् ।
पिण्डेन पिण्डितं पिण्डं पिण्डरूपमुदाहृतम् ॥ ७९ ॥
(अतीतकाले मृत्पिण्डरूपं कुम्भे व्यवस्थितम् ।
पञ्चात्मकं मूर्तिपिण्डं धातुबद्धगुणात्मकम्) ॥ ८० ॥
तस्माद्वै कर्मसादाख्यं पिण्डरूपमुदाहृतम् ।
एतच्छिवमयं पिण्डं सर्वतत्त्वालयं विदुः ॥ ८१ ॥
पञ्चमूर्तमयं देवं पञ्चतत्त्वात्मकं भवेत् ।
मूर्तीनां देहभेदैस्तु गुणैः पञ्चाननं विदुः ॥ ८२ ॥
तद्देहस्तु महेशादिसर्वतत्त्वादिसम्भवः ।
तस्य वक्त्रेषु संभूताः सिद्धान्ताः शैवतान्त्रिकाः ॥ ८३ ॥
तत्त्वार्थे तु महेशादिसर्वतत्त्वसमुद्भवः ।
सर्वज्ञानमयं देवं सर्वकारणकारणम् ॥ ८४ ॥
एवं लिङ्गं तु कर्मेशं ध्यायेत् सकलनिष्कलम् ।
देहस्थं सकलं ज्ञेयं निष्कलं देहवर्जितम् ॥ ८५ ॥
देहं त्वेतत् कलोपेतं धातुपिण्डमिति स्मृतम् ।
षट्कला चैव धात्री च षडङ्गैस्तु प्रकल्पयेत् ॥ ८६ ॥
सर्वाङ्गैरपि सम्पूर्णं सर्वावयवसुन्दरम् ।
एवं तत्स्मृतिमात्रेण मूर्तिः सकलरूपधृत् ॥ ८७ ॥
निष्कलं तदभावे तु तत्स्यात् सकलनिष्कलम् ।
सवीर्यं चैव निर्देहं मांसास्थिरुधिरं न च ॥ ८८ ॥
इन्द्रचापमिवाकाशे दर्पणे प्रतिबिम्बवत् ।
इत्येवं मनसा कल्प्य निष्कलं सकलं भवेत् ॥ ८९ ॥
ध्यानलक्षणमित्युक्तमङ्गभावमथोच्यते ।
अङ्गभेदो महासेन चतुर्भिर्भेद उच्यते ॥ ९० ॥

अङ्गं प्रत्यङ्गसाङ्गं चोपाङ्गं चत्वारि च क्रमात् ।
शिरो वक्त्रं च हृदयमङ्गं चेति प्रकीर्तितम् ॥ ९१ ॥
शिवमध्यगतं नृत्तं नृत्तमध्ये तु शान्तकम् ।
अतीतं शान्तमध्ये तु शान्त्यतीतं परात्परम् ॥ ९२ ॥
वक्षः कण्ठस्तनौ बाहू नाभिगुह्योदराणि च ।
नेत्रे नासास्यकर्णौ च पाणिपादौ तथाङ्गुलिः ॥ ९ ॥
ऊरू च जानुजङ्घे च प्रत्यङ्गं चेति कीर्तितम् ।
मूर्तीनां गुणरूपञ्च साङ्गञ्चेति प्रकीर्तितम् ॥ ९४ ॥
गुणं चिह्नमिति ज्ञेयं तद्गुणं दशधा भवेत् ।
त्रिगुणं शक्तिखण्डञ्च दुर्भेद्योऽनुग्रहस्तथा ॥ ९५ ॥
विधिर्मायाविवरणं वर्णसंहार एव च ।
एते दश गुणाः प्रोक्तास्तेषां लक्षणमुच्यते ॥ ९६ ॥
त्रिगुणं शूलमित्युक्तं शक्तिः परशुरीरितः ।
खड्गमीशप्रतापः स्याद् दुर्भेद्यं वज्रमिष्यते ॥ ९७ ॥
ईशस्यानुग्रहश्चैव अभयन्तु प्रशस्यते ।
विधिः स्यान्नागरूपन्तु पाशं मायास्वरूपकम् ॥ ९८ ॥
विवरणमङ्कुशं चैव वर्णं नादात्मकं विदुः ।
संहारस्त्वग्निरूपं स्यात् तेषामाख्याः प्रकीर्तिताः ॥ ९९ ॥
एतानि गुणरूपाणि साङ्गानि च यथाक्रमम् ।
वस्त्रोपवीतमाल्यानि गन्धाश्चाभरणं तथा ॥१००॥
तथैवाभरणं चैव उपाङ्गं प्रोच्यतेऽपि च ।
अङ्गभेदमिति प्रोक्तं तस्य रूपमिहोच्यते ॥१०१॥
कुन्देन्दुस्फाटिकाभासं जटामकुटमण्डितम् ।
पञ्चमूर्धसमायुक्तं पञ्चवक्त्रसमायुतम् ॥१०२॥
प्रतिवक्त्रं विशेषेण त्रिलोचनसमायुतम् ।
दिग्भुजं तु महासेन द्विपादं पद्मसंस्थितम् ॥१०३॥
शूलं परशुखड्गौ चाभयवज्रे च दक्षिणे ।
नागं पाशङ्कुशं चैव घण्टां वह्निं च वामके ॥१०४॥

सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम् ।
दिव्याम्बरधरं देवं दिव्यरूपमुदाहृतम् ॥१०५॥
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गं दिव्यमालाविभूषितम् ।
शान्तरूपमिदं वत्स किञ्चित् प्रहसिताननम् ॥१०६॥
एतद्रूपं स्मरेन्नित्यं धर्मकामार्थमोक्षदम् ।
ध्यानरूपमिदं प्रोक्तं विशेषमधुनोच्यते ॥१०७॥
कर्मेशं पूर्वरूपन्तु कर्तृसव्याननं भवेत् ।
अपरं मूर्तिवक्त्रं स्यादमूर्तं चोत्तराननम् ॥१०८॥
ऊर्ध्वं तु शिवसादाख्यमेवं पञ्चाननं विदुः ।
ईशानादीनि मूर्धादि तथा कर्मान्तवद् भवेत् ॥१०९॥
प्राग्वक्त्रं पूर्णमुद्दिष्टं पश्चिमं पश्चिमाननम् ।
दक्षिणाभिमुखं याम्यमुत्तरं चोत्तराननम् ॥११०॥
ऊर्ध्वं तु दक्षिणं सव्यमितरं पश्चिमोत्तरम् ।
किञ्चिदस्मिन् विशेषोऽस्ति चोर्ध्ववक्त्रस्य षण्मुख ॥१११॥
मूलं संचिन्त्य यद्वक्त्रं परं मुखमिति स्मृतम् ।
पूजाकाले तु तद्ध्यात्वा अर्चयेत् कर्मवक्त्रवत् ॥११२॥
एवं सङ्कल्प्य विधिवत् पूजान्ते पूर्ववद्भवेत् ।
एतत्पञ्चात्मकत्वात्तु सर्वकारणकारणम् ॥११३॥
सदाशिवमिति प्रोक्तमिति शास्त्रेषु निश्चितम् ।
एतद्वै कर्मरूपत्वात् कर्मकर्मणि कारयेत् ॥११४॥
कर्षणादिक्रियादीनि कर्म चेति निगद्यते ।
तस्माद्वै स्थापतादीनि कर्ममूर्तौ तु कारयेत् ॥११५॥
लिङ्गे वा स्थण्डिले वह्नौ कुम्भे वा हृदयेऽपि वा ।
ध्यात्वा सदाशिवं पूज्य विधिवत् स्थापयेत्ततः ॥११६॥
आवाहनं त्वात्मनि चित्प्रकाशं तत्र स्थितिस्थापनमीश्वरस्य ।
सान्निध्यमात्रेश्वरसन्निधानं स्वस्य शिवे विरोधः ॥११७॥

कर्त्रादिकं चतुर्णां तु स्थापनञ्च न कारयेत् ।
योगिनां मन्त्रिणां चैव स्तुतिमात्र भवेद् गुह ॥११८॥

इत्येतैर्लक्षणैर्युक्तं कर्मसादाख्यलिङ्गकम् ॥
शिवादिकर्मपर्यन्तं क्रमेणैव प्रकीर्तितम् ॥११९॥

सादाख्यलक्षणं प्रोक्तं महेशं शृणु षण्मुख ।
कर्मेशस्य सहस्रांशाद् महेशस्य समुद्भवः ॥१२०॥

महेशं सकलं विद्यात् सृष्टिस्थितिलयात्मकम् ।
पञ्चविंशतिभेदैस्तु तन्मूर्तिर्विविधा भवेत् ॥१२१॥

नानारूपधरं देवं नानारूपसमन्वितम् ।
नानाचिह्नसमोपेतं नानालीलाधरं हरम् ॥१२२॥

स्थानयानसमासीनं नृत्तं कोपञ्च साम्यकम् ।
अनेकाकारसंयुक्तं देवदेवं महेश्वरम् ॥१२३॥

जटामुकुटसंयुक्तमेकवक्त्रं त्रिनेत्रकम् ।
चतुर्भुजसमायुक्तं एकपद्मासनस्थितम् ॥१२४॥

वरदाभयहस्तञ्च मृगीपरशुधारकम् ।
महेशरूपमेवोक्तं रूपभेदमथोच्यते ॥१२५॥

प्रथमं सोमधारी स्याद् द्वितीयमुमया सह ।
तृतीयमुरसा रूढं चतुर्थं नृत्तरूपकम् ॥१२६॥

वैवाहं पञ्चमं विद्यात् षष्ठं भिक्षाटनं भवेत् ।
कामारिं सप्तमं विद्यात् कालारिश्चाष्टमो भवेत् ॥१२७॥

नवमं त्रिपुरारिः स्याद् जालन्धरवधो दश ।
एकादशमजारिः स्याद् द्वादशं वीरभद्रकः ॥१२८॥

त्रयोदशं हरिध्वंसमर्धनारी चतुर्दशम् ।
किरातः स्यात् पञ्चदशं कङ्काली षोडशं भवेत् ॥१२९॥

चण्डेशानुग्रहश्चैव तथा सप्तदशं भवेत् ।
विषापहरणश्चैव अष्टादशमिति स्मृतम् ॥१३०॥

चक्रदानस्वरूपञ्च एकोनविंशतिः स्मृतम् ।
विघ्नप्रसादो विंश स्यात् सोमस्कन्दस्ततः परम् ॥१३१॥

उमास्कन्दश्चैकविंशो द्वाविंशश्चैकपातकः ।
सुखावहस्त्रयोविंशो भवेच्च तदनन्तरम् ॥१३२॥

द्वाविंशमेकपादः स्यात् त्रयोविंशः सुखावहः ।
दक्षिणामूर्तिरूपन्तु चतुर्विंशतिरीरितम् ॥१३३॥

लिङ्गोद्भवस्वरूपन्तु पञ्चविंशं प्रकीर्तितम् ।
एते महेशरूपाः स्युर्मूर्तिभेदाः प्रकीर्तिताः ॥१३४॥

सोमधार्यादिलिङ्गान्तं कर्मणा च समुद्भवम् ।
एते महेश्वररूपाश्च कर्माख्यादिसमुद्भवाः ॥१३५॥

तन्महेश्वरकोट्यंशाद् ब्रह्मविष्णुसमुद्भवौ ।
त्रिकोणमुमया सार्द्धं सोमसूर्याग्निलोचनम् ॥१३६॥

घ्राणे वायुः समुत्पन्नो गणेशस्तु गलोद्भवः ।
षण्मुखो हृदये जातो नाभौ देवाश्च संभवाः ॥१३७॥

पञ्चाशत्कोटिदेवाश्च महेशांशसमुद्भवाः
ऋषयश्च तथा कोट्यो रोम्णि चैव समुद्भवाः ॥१३८॥

तत्त्वानामुद्भवः प्रोक्तः शक्तीनामुद्भवं शृणु ।
बिन्दुरूपदशांशेन चोमाशक्तिसमुद्भवः ॥१३९॥

उमाऽम्बिका गणेशी च ईश्वरी च मनोन्मनी ।
एकैकेन दशांशेन जायते क्रमशस्तथा ॥१४०॥

एता वै शक्तयः पञ्च शियाधीनाश्च शक्तयः ।
मनोन्मनीसहस्रांशाद् गौरी जातेति कीर्तिता ॥१४१॥

तया सरस्वती दुर्गा उमायाश्च प्रभावतः ।
शची ज्येष्ठा च लक्ष्मीश्च तथा चान्याश्च शक्तयः ॥१४२॥

कोटिशक्तय एता वै गौरीदेहसमुद्भवाः ।
शक्तिभेदो विशेषेण समासात् परिकीर्तितः ॥१४३॥

शिवादयो महेशान्ता एकत्रिंशत् प्रकीर्तिताः ।
यो वेत्ति तत्त्वभेदं हि स पूजास्थापनार्हकः ॥१४४॥

एवं त्रिमूर्ति भेदस्तु समासात् परिकीर्तितः ।
तत्त्वभेदो मया प्रोक्तो वर्णभेदमतः शृणु ॥१४५॥

इति वातुले शुद्धाख्यतन्त्रे तत्त्वभेदो नाम
प्रथमः पटलः समाप्तः ॥

अथ

द्वितीयः पटलः

अथातः संप्रवक्ष्यामि वर्णभेदविधिं परम् ।
मन्त्राणामुद्भवं चैव वर्णानां च समुद्भवम् ॥ १ ॥
अकारादिक्षकारान्तमेकपञ्चाशदक्षरम् ।
एते वर्णाः प्रशस्यन्ते कामितार्थप्रदायकाः ॥ २ ॥
स्त्रीरूपाश्चैव पुंरूपास्तथा चोभयरूपकाः ।
सर्वे वै देवतारूपाः प्रत्येकं वर्णरूपवृत् ॥ ३ ॥
वर्णो बीजं तथार्णं च लिङ्गमक्षरमात्रकम् ।
एतानि षट् च नामानि वर्णपर्यायवाचकाः ॥ ४ ॥
तेषां समुद्भवं नामरूपभेदं तथांशकम् ।
तत्त्वमन्त्रादिभेदश्च अधिदैवफलं तथा ॥ ५ ॥
स्थूलसूक्ष्माकृतिं चैव जीवोपाधिविभेदकम् ।
एतद् भेदं महासेन संक्षेपाच्छृणु षण्मुख ॥ ६ ॥
शिवतत्त्वे परे सूक्ष्मे बिन्दुरूपं तु जायते ।
बिन्दोर्नादः समुत्पन्नो नादाच्छक्तिरजायते ॥ ७ ॥
शक्तेस्तु जायते शब्दः शब्दाज्जातं तु वाग्भवम् ।
वाग्भवाच्च कला जाताः कलाभ्यो विकलास्तथा ॥ ८ ॥
तस्माद्वै वाचको मन्त्रो मन्त्रस्तैरेव भिद्यते ।
एष सृष्टिक्रमः प्रोक्तस्तेषां लक्षणमुच्यते ॥ ९ ॥
बिन्दुरूपा परा शक्तिर्नादश्चैवादिरीरितः ।
शक्तिरिच्छेति विज्ञेया शब्दश्च ज्ञानमीरितः ॥ १० ॥
वाग्भवः स्यात् क्रियाशक्तिः कला वै षोडश स्वराः ।
तेषां रूपं यथा प्रोक्तं प्रकृतिर्विकृतिस्तथा ॥ ११ ॥
प्रकृतिः सप्त वर्णाश्च विकृतिस्तु नवार्णकः ।
अकारश्च इकारश्च उकारश्च ऋकारकः ।
लृकारश्चैव एकार औकरश्च तथैव च ॥ १२ ॥

एते सप्त स्वराः प्रोक्ता प्रकृतिस्तु समीरिता ।
शेषा विकृतयः प्रोक्तास्तेषामुद्भव उच्यते ॥ १३ ॥
अकारेऽजायताकार इकारे त्वीसमुद्भवः ।
उकारे चैव ऊकार ऋकारे ॠसमुद्भवः ॥ १४ ॥
लृकारादेव लॄकारः एकारादैसमुद्भवः ।
ओकारादौ तथा ज्ञेयः क्रमेणैव समुद्भवः ॥ १५ ॥
एता विकृतयः प्रोक्ता आकारादिनवार्णकाः ।
अकारादिविसर्गान्ता एते वै षोडश स्वराः ॥ १६ ॥
कला मात्रा स्वरा जीवाः प्रकृतिर्विकृतिस्तथा ।
प्राणात्मानौ च देही च कलापर्यायवाचकाः ॥ १७ ॥
(एतानि दशनामानि कलानामेव युज्यते ।
कलाभेदमिदं प्रोक्तं त्रिकलाभेदकं शृणु ॥ १८ ॥
ककारादिक्षकारान्ता वर्णाश्च विकलाः स्मृता ।
ककारादीनि वर्णानि अकारे तु समुद्भवाः ॥ १९ ॥
ओकारे तु समुद्भूता यकारादि दश स्मृताः) ।
देहोपाधिशरीरश्च क्षेत्राधारे तनुस्तथा ॥ २० ॥
व्यञ्जनं विकला शक्तिर्बिन्दुपर्यायवाचकाः ।
कलानां विकलानां तु त्रीणि रूपाणि वक्ष्यते ॥ २१ ॥
शिवाग्निभूतरुद्राश्च त्रयोदशतिथिस्तथा ।
एते वै स्वरवर्णाश्च पुंलिङ्गाश्चेति कीर्तिताः ॥ २३ ॥
पक्षवेदा रसो भानुर्मनुश्चवाधिकारकम् ।
एतानि षट्च बीजानि स्त्रीलिङ्गाश्चेति कीर्तिताः ॥ २३ ॥
ऋ - ॠ - लृ - लॄ च चत्वारो नपुंसकमिति स्मृताः ।
ककारश्च गकारश्च चकारश्च जकारकः ॥ २४ ॥
टकारश्च डकारश्च तकारश्च दकारकः ।
पकारश्च बकारश्च यकारश्च हकारकः ॥ २५ ॥
एते द्वादशवर्णाश्च पुंलिङ्गाश्चेति कीर्तिताः ।
खकारश्च धकारश्च छकारश्च झकारकः ॥ २६ ॥

ठकारश्च ढकारश्च थकारश्च धकारकः ।
फकारश्च भकारश्च शकारश्च सकारकः ॥ २७ ॥
एतानि भानुबीजानि जायाश्चेति प्रकीर्तिताः ।
शेषान् नपुंसकान् विद्यात् त्रयो भेदा इति स्मृताः ॥ २८ ॥
अकारादित्रयो व्योम ईकारादित्रयोऽनिलः ।
उकारादित्रिवर्णाश्च वैश्वानर इति स्मृताः ॥ २९ ॥
एकारादित्रयो ह्याप ओकारादित्रयो मही ।
प्रकृतिस्तत्त्वबीजं स्याद् विकृतिर्मूर्तिरुच्यते ॥ ३० ॥
प्रभावं विकलाः प्रोक्ता इत्येवं त्रिविधं भवेत् ।
प्रकृतिर्ह्रस्वमित्युक्ता विकृतिर्दीर्घमीरिता ॥ ३१ ॥
एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ इष्यते ।
(त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं त्वर्धमात्रकम्)
व्यञ्जनं त्वर्धमात्रं स्यादित्येतल्लक्षणं भवेत् ॥ ३२ ॥
अकारः सर्वदैवत्यं रक्तं सर्ववशीकरम् ।
आकारः स्यात्परा शक्तिः स्वेदमाकर्षणं भवेत् ॥ ३३ ॥
इकारो विष्णुदैवत्यं श्यामं रक्षाकरं भवेत् ।
मायाशक्तिरितीकारः पीतं स्त्रीणां वशीकरम् ॥ ३४ ॥
उकारो वास्तुदैवत्यं कृष्णं राज्यवशीकरम् ।
ऊकारो भूमिदेवी च श्यामं लोकवशीकरम् ॥ ३५ ॥
ऋकारो ब्रह्मणो ज्ञेयं पीतं ग्रहविनाशकम् ।
शिखण्डिरूपं ॠकारमञ्जनं ज्वरनाशकम् ॥ ३६ ॥
अश्विनीभ्यां लृ-ॡ चैव श्वेतरक्तं ज्वरापहम् ।
एकारो वीरभद्रं स्यात् पीतं सर्वार्थसिद्धिदम् ॥ ३७ ॥
ऐकारं वाग्भवं विद्यात् स्फाटिकं ज्ञानसिद्धिदम् ।
ओकारमीश्वरं विद्याज्ज्योतिः सर्वफलप्रदम् ॥ ३८ ॥
औकार आदिशक्तिः स्याच्छुक्लं सर्वार्थसिद्धिदम् ।
अङ्कारस्तु महेशः स्याद् रक्तवर्णं सुखप्रदम् ॥ ३९ ॥

अकारः कालरुद्रश्च रक्तं पाशनिकृन्तनम् ।
प्राजापत्यं ककारश्च पीतं पुष्टिकरं भवेत् ॥ ४० ॥
खकारं जाह्नवी ज्ञेयं क्षीराभं पापनाशनम् ।
गकारं गणरूपं स्याद् रक्ताभं विघ्ननाशनम् ॥ ४१ ॥
घकारं भैरवं ज्ञेयं मुक्ताभं शत्रुनाशनम् ।
ङकारं कालबीजं स्यात् कालं सर्वजयं भवेत् ॥ ४२ ॥
चकारं चण्डरुद्रं स्यादञ्जनं त्रिपुरापहम् ।
छकारो भद्रकाली स्याद्राजावर्तं जयप्रदम् ॥ ४३ ॥
जकारो जम्भहा ज्ञेयं रक्ताभश्च जयावहम् ।
झकारमर्धनारी स्यात् श्यामं रक्तजयावहम् ॥ ४४ ॥
ञकारं कोटि विज्ञेयं पीतं रोगविनाशनम् ।
भृङ्गीशः स्यात् श्वेतं रक्तवर्णसुखावहम् ॥ ४५ ॥
ठकारं चन्द्रबीजं स्यात् श्वेतं मृत्युविनाशनम् ।
डकारं चैकनेत्रं स्यात् पीतं कालजयं भवेत् ॥ ४६ ॥
ढकारं यमबीजं स्यान्नीलं मृत्युविनाशनम् ।
णकारं नन्दिबीजं स्याद् रक्ताभं चार्थसिद्धिदम् ॥ ४७ ॥
तकारं वास्तुदैवत्यं श्वेतं सर्वजयं भवेत् ।
थकारं धर्मिणो ज्ञेयं कुन्दाभं स्याज्जयप्रदम् ॥ ४८ ॥
दुर्गाबीजं दकारं स्यात् श्यामं सर्वार्थसिद्धिदम् ।
धकारं धनदं प्रोक्तं पीताभं चार्थसिद्धिदम् ॥ ४९ ॥
नकारं चैव सावित्री स्फाटिकं पापनाशनम् ।
पकारं पर्जबीजं स्याच्छुक्लाभं वृष्टिसिद्धिदम् ॥ ५० ॥
फकारं पाशुपत्यं स्याद् ज्ञानं पापनिकृन्तनम् ।
बकारं त्रिमूर्तिः स्यात् पीतं सर्वार्थसिद्धिदम् ॥ ५१ ॥
भकारं भार्गवं विद्याद् रक्तं सर्वार्थसिद्धिदम् ।
मकारं मदनं विद्याच्छाम्यं सर्वजयप्रदम् ॥ ५२ ॥
यकारं वायुदैवत्यं कृष्णमुच्चाटनं भवेत् ।
रकारं वह्निदैवत्यं रक्ताभं संहृतिर्भवेत् ॥ ५३ ॥

लकारं क्षितितत्त्वं स्यात् पीतं स्यात् स्तम्भनं भवेत्।
वारणं स्याद् वकारं तु शुक्लाभं रोगनाशनम् ॥ ५४ ॥
लक्ष्मीरूपं शकारं स्याद्धेमाभं श्रीकरं भवेत्।
षकारं द्वादशादित्यं रक्तं सर्वार्थसिद्धिदम् ॥ ५५ ॥
सकारं शक्तिरूपं स्याद् रक्तं स्थितिकरं भवेत्।
हकारं शिवबीजं स्याच्छुद्धस्फटिकसन्निभम् ॥ ५६ ॥
अणिमाद्यष्टसिद्धिं च भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।
लकारं चात्मतत्त्वं स्याद् रक्ताभं सर्वसिद्धिदम् ॥ ५७ ॥
विद्यातत्त्वं क्षकारं स्यात् क्षीराभञ्च सुखप्रदम्।
इत्येते ह्यधिदेवाश्च फलं वर्णक्रमेण तु ॥ ५८ ॥
अकारादिक्षकारान्ताः समासत् परिकीर्तिताः।
कला जीवमिति ख्यातं विकला देहमुच्यते ॥ ५९ ॥
कलाश्च विकलाश्चैव देहिदेहमिति स्मृतम्।
देहिरूपं द्विधा प्रोक्तं स्थूलं सूक्ष्मं तथैव च ॥ ६० ॥
देहमेकं विनिर्दिष्टं केवलं सूक्ष्ममुच्यते।
अकारादिविसर्गान्तं केवलं तु स्वराकृति ॥ ६१ ॥
तत्स्थूलमिति विज्ञेयं सूक्ष्मम् मध्यस्थितिर्भवेत्।
ककारादीति वर्णानि विकलाश्चेति कीर्तिताः ॥ ६२ ॥
तद्रूपं चार्धमात्रं तु सूक्ष्मं रूपसिहोच्यते।
एवं कला च विकला स्थूलसूक्ष्माकृतिर्भवेत् ॥ ६३ ॥
कलानां तत्त्ववर्णानि संजीवार्णमिति स्मृतम्।
कलाहीनं तु यद्वर्णं देहं तस्य विनिर्दिशेत् ॥ ६४ ॥
देहिदेहे सुसंयोज्य जीवे जीवं न योजयेत्।
सर्वेषां देहभेदोऽस्ति ह्यात्मभेदो न विद्यते ॥ ६५ ॥
आत्मा च जीवमित्युक्तो जीवो जीवमिति स्मृतम्।
तस्माज्जीवात् परं नास्ति पश्चान्न च विनिर्दिशेत् ॥ ६६ ॥

तस्माद् वै जीवदेहेषु कलाबीजं सुयोजयेत् ।
प्रत्येकं वर्णरूपं च देवतात्मकमुच्यते ।। ६७ ।।
देवानां बीजनामानि वर्णास्तत्र प्रकल्पिताः ।
तस्माद् बीजानि चोक्तानि ज्ञात्वा मन्त्रान् समुद्धरेत् ।। ६८ ।।
देवातास्थापने काले लिङ्गे वा कौतुकेऽति वा ।
दीक्षायां प्रोक्षणे काले सकलीकरणे तथा ।। ६९ ।।
बीजानि विन्यसेद् धीमान् मूर्धादिक्रमशस्तथा ।
एवमेव क्रमेणैव ज्ञात्वा वर्णान् विशेषतः ।। ७० ।।
तत्तद्वर्णाकृतिं ध्यात्वा जपेत् सर्वार्थसिद्धिदम् ।
वर्णभेदो मया प्रोक्तश्चक्रभेदमतः शृणु ।। ७१ ।।

इति श्रीवातुले शुद्धाख्यतन्त्रे वर्णभेदो नाम
द्वितीः पटलः समाप्तः ।।

अथ

तृतीयः पटलः

अथातः संप्रवक्ष्यामि चक्रभेदविधिं परम्।
सर्वदेवप्रियार्थाय सर्वलोकहिताय च ॥ १ ॥
मन्त्राणां बोधनार्थाय चक्ररूपं प्रकीर्तितन्।
सर्वदेवमयं चक्रं सर्वं वर्णात्मकं विदुः ॥ २ ॥
चक्ररूपं तु तत्साक्षाच्छिवज्ञानस्वरूपकम्।
तस्मात् तस्य स्वरूपं तु लक्षणं चाधिदैवतम् ॥ ३ ॥
वर्णन्यासक्रमं चैव संक्षेपाच्छृणु षण्मुख।
महेन्द्रे मलये सह्ये केदारे मन्दरचले ॥ ४ ॥
गङ्गातीरे तथा विन्ध्ये गह्वरे वाब्धितीरके।
देवालये गवां गोष्ठे नदीतीरतडागयोः ॥ ५ ॥
अन्येषु शुद्धदेशेषु देशिकस्य गृहेऽपि वा।
इत्येतेषूक्तदेशेषु चक्रमुद्धारयेत् क्रमात् ॥ ६ ॥
भूप्रदेशे शुभे रम्ये निम्नोन्नतविवर्जिते।
नाभिमात्रं खनित्वा कुं पांशुना पूरयेत्ततः ॥ ७ ॥
ततोर्ध्वं मण्डपं कुर्याद् द्वारशस्तम्भसंयुतम्।
चतुर्द्वारसमायुक्तं रन्धास्ताभिरलंकृतम् ॥ ८ ॥
वितानध्वजसंयुक्तं दर्भमालासमायुतम्।
सर्वालङ्कारसंयुक्तं तरङ्गेणैव वेष्टितम् ॥ ९ ॥
दर्पणोदरसांकश्यं गोमयेनानुलेपयेत्।
देशिकस्तु शुचिर्भूत्वा क्षीरभुग्विजितेन्द्रियः ॥ १० ॥
पूर्वरात्रोपवासी च प्रभाते यन्त्रमुद्धरेत्।
सुस्नायाचम्य विधिवत् सकलीकृतविग्रहः ॥ ११ ॥

पुण्याहं वाचयित्वा च प्रोक्षयेद् हृदयेन तु ।
रङ्गेण धातुना चैव तन्मध्ये च क्रमाल्लिखेत् ॥ १२ ॥
पूर्वापरगतं तं तु युग्मसूत्रं तु कारयेत् ।
विस्तारं द्वादशाङ्गुल्यं तथा वै दक्षिणोत्तरम् ॥ १३ ॥
मध्यमे चतुरस्त्रं स्याद् वृत्तं तत्कर्णिका भवेत् ।
युग्माङ्गुलेन तद्बाह्ये निवृत्तं भ्रामयेद् बुधः ॥ १४ ॥
एकाङ्गुलेन तद्बाह्ये त्रीणि वृत्तानि कारयेत् ।
बाह्ये तु मुकुलाकाराद् द्वात्रिंशत् परितो भवेत् ॥ १५ ॥
कर्णिकायास्तु परितश्चाष्टपत्राणि वै लिखेत् ।
तद्बाह्ये चाष्टपत्राणि कृत्वा चोपदलानि वै ॥ १६ ॥
अष्टदिक्षु समन्ताच्च पक्षे पक्षे गुणान् गुणान् ।
तृतीयावारणे बाह्ये दलांश्चोपदलान् कुरु ॥ १७ ॥
कर्णिकामध्यमे कुर्याद् रन्ध्रं तत्सूक्ष्मकर्णिका ।
तद्बाह्ये परितो लेख्यं चतुष्पत्रं सकेशरम् ॥ १८ ॥
राजसेनैव सूत्रं तु सात्त्विकेन दलानि वै ।
कर्णिकां पीतवर्णेन बीजानि तामसेन तु ॥ १९ ॥
रक्तकृष्णस्थितेनैव बाह्यवृत्तत्रयं लिखेत् ।
तब्दाह्ये मुकुलान् सर्वान् रक्तवर्णेन लेखयेत् ॥ २० ॥
चक्रन्यासो मया प्रोक्तो देवतान्यास उच्यते ।
कर्णिकामध्यमे पूज्या शक्तिराधाररूपिणी ॥ २१ ॥
अबिम्कादिचतुःशक्ती चतुष्पत्रेषु संयजेत् ।
वामादिशक्तयश्चाष्टौ प्रथमावरणे यजेत् ॥ २२ ॥
अष्टमूर्तिगणाश्चैव द्वितीयावरणे यजेत् ।
विद्येशान् लोकापालांश्च वसूंश्चैव तृतीयके ॥ २३ ॥
बाह्यरेखात्रयं पूज्यं मण्डलत्रितयं तथा ।
तत्पत्रे मुकुलाकारे वास्तुदेवान् प्रपूजयेत् ॥ २४ ॥

गन्धपुष्पादिभिश्चैव पूर्वादीनि स्वनामतः ।
देवतान्यसमेवोक्तं वर्णन्यासमथोच्यते ।। २५ ।।
कर्णिकायां तु तन्मध्ये शिवबीजं तु विन्यसेत् ।
पूर्वपत्रे न्यसेद् बिन्दुमात्मबीजं तु दक्षिणे ।। २६ ।।
वारुणे सूक्ष्मनादं तु विद्याबीजं तथोत्तरे ।
एवं तत्तद्दले न्यसेत् पञ्चरूपं षडानन ।। २७ ।।
तत्तद्बाह्यदलेष्वेवं क्रमाद्वर्णान् प्रविन्यसेत् ।
एकद्वित्रितये चैव एकद्वित्रितयं न्यसेत् ।। २८ ।।
सञ्च अञ्च सर्मूतिञ्च कञ्च भावञ्च गञ्च वै ।
सञ्च इञ्च सर्मूतिञ्च घञ्च भावञ्च चचञ्च वै ।। २९ ।।
प्राञ्च उञ्च सर्मूतिञ्च छञ्च भावञ्च झञ्च वै ।
वञ्च ऋञ्च सर्मूतिञ्च यञ्च भावञ्च ठञ्च वै ।। ३० ।।
लञ्च लृञ्च सर्मूतिञ्च डञ्च भावञ्च णञ्च वै ।
रञ्च एञ्च सर्मूतिञ्च तञ्च भावञ्च दञ्च वै ।। ३१ ।।
यञ्च ओञ्च सर्मूतिञ्च धञ्च भावञ्च पञ्च वै ।
मञ्च अञ्च सर्मूतिञ्च फञ्च भावञ्च भञ्च वै ।। ३२ ।।
एतान् वर्णांश्च पूर्वादीन् विन्यसेत् प्रथमादिषु ।
एतच्चक्रं महासेन रहस्यमतिदुर्लभम् ।। ३३ ।।
वर्णानामधिदेवांश्च पूजयेत्तु यथाक्रमम् ।
प्रासादादीनि मन्त्राणि सर्वमस्मिन् व्यवस्थितम् ।। ३४ ।।
तच्चक्रं पूजयेन्नित्यं सर्वपूजासमं भवेत् ।
रोचनाकुङ्कुमोपेतैः कर्पूरागुरुचन्दनैः ।। ३५ ।।
भूर्जपत्रे लिखेत् चक्रं गुलिकां कारयेद् बुधः ।
शिरसा धारयित्वा तु सर्वकामार्थसिद्धिदम् ।। ३६ ।।

आयुरारोग्यमैश्वर्यं पुत्रपौत्राभिवर्धनम् ।
सर्वरक्षाकरं चैव सर्वव्याधिनिवारकम् ॥ ३७ ॥

सर्वदुःखप्रशमनं सर्वक्षुद्रनिवारकम् ।
भूतप्रेतपिशाचाश्च वेतालब्रह्मराक्षसाः ॥ ३८ ॥

यन्त्ररूपधरं दृष्ट्वा दूराद् गच्छन्ति भीरवः ।
चक्रभेदो मया प्रोक्तो वर्गभेदमथ शृणु ॥ ३९ ॥

इति श्रीवातुले शुद्धाख्यतन्त्रे चक्रभेदो नाम
तृतीयः पटलः समाप्तः ॥

●

अथ
चतुर्थः पटलः

वर्गभेदं प्रवक्ष्यामि समासाच्छृणु षण्मुख।
वर्गस्तु त्रिविधिः प्रोक्तः प्रथमः स्थितिवर्गकः॥ १॥
सृष्टिवर्गो द्वितीयः स्यात् संहारस्तु तृतीयकः।
स्थितिमार्गस्त्रिवर्गः स्यात् सृष्टिश्चाष्टविधा भवेत्॥ २॥
संहारः पञ्चवर्गः स्यात् तेषां लक्षणमुच्यते।
चक्रे यथा स्थिता वर्णा यथा वै स्थितिरीरिता॥ ३॥
सकाराद्यष्टवर्णाश्च प्रथमावरणे लिखेत्।
प्रथमो वर्ग इत्युक्तः सात्त्विकं नामधेयकम्॥ ४॥
द्वितीयावरणे वर्णा हकाराद्याश्च षोडश।
द्वितीयवर्ग इत्युक्तो राजसं संप्रकीर्तितम्॥ ५॥
तृयीये तु ककारादिचतुर्विंशतिवर्णकाः।
तृतीयो वर्ग इत्युक्तस्तामसं नामधेयकम्॥ ६॥
वर्गभेदो मया प्रोक्तः स्थितिमार्गे प्रकीर्तितः।
पञ्च प्रासादमन्त्राश्च स्थितिमार्गेण चोद्धरेत्॥ ७॥
एवं स्थितिक्रमः प्रोक्तः सृष्टिमार्गं ततः शृणु।
अकादिक्षकारान्तवर्णानां सृष्टिरुच्यते॥ ८॥
तस्मात् सृष्टिक्रमेणैव वक्ष्यन्ते चाष्टवर्गकाः।
अवर्गं प्रथमं विद्यादैन्द्रवर्ग उदाहृतः॥ ९॥
द्वितीयस्तु कवर्गश्च वह्निवर्गः प्रकीर्तितः।
चवर्गस्तु तृतीयश्च याम्यवर्ग उदाहृतः॥ १०॥
टवर्गस्तु चतुर्थश्च नैर्ऋतो वर्ग ईरितः।
पञ्चमस्तु तवर्गश्च वारुणो वर्ग ईरितः॥ ११॥
षष्ठं विद्यात् पवर्गश्च मरुद्वर्ग उदाहृतः।
सप्तमस्तु यवर्गश्च कौबेरो वर्ग ईरितः॥ १२॥

शवर्गं चाष्टमं विद्यादीशवर्ग उदाहृतः ।
एते वै चाष्टवर्गास्ते सृष्टिमार्ग उदाहृतः ॥ १३ ॥
सदाशिवस्य मन्त्राणां पञ्चब्रह्माङ्गमेव च ।
सौम्यमन्त्रान् समस्तांश्च सृष्टिमार्गेण चोद्धरेत् ॥ १४ ॥
एवं सृष्टिक्रमः प्रोक्तः संहारञ्च ततः शृणु ।
क्षकारादि अकारान्तं संहार इति कीर्तितः ॥ १५ ॥
क्षकारादि अकारान्तं दशार्णं प्रथमं विदुः ।
पार्थिवो वर्ग इत्युक्तो मकारादि दशाक्षरम् ॥ १६ ॥
द्वितीयो वर्ग इत्येव आपो वर्ग उदाहृतः ।
पकारादि चकारान्तं तृतीय चानलं विदुः ॥ १७ ॥
तकारादि ककारान्तं चतुर्थं मारुतं विदुः ।
(ङकारादि चैकारान्तं दशार्णं मारुतं विदुः ।
एकारादि ह्यकारान्तं रुद्रार्णं व्योमवर्गकम् ॥)
अःकारादि अकारान्तं रुद्रान्तं व्योमवर्गकम् ॥ १८ ॥
एते वै पञ्चवर्गास्ते संहारेति प्रकीर्तिताः ।
समस्तान् रुद्रमन्त्रांश्च संहारेण समुद्धरेत् ॥ १९ ॥
एवं त्रिवर्गभेदास्ते कीर्तिताश्च समासतः ।
वर्णभेदो मया प्रोक्तो वर्णनामान्यथा शृणु ॥ २० ॥
चक्रे तु कर्णिकादीनि वर्णानि च यथाक्रमम् ।
वक्ष्ये नामानि संक्षेपाच्छृणु तत्त्वं शिवादिकम् ॥ २१ ॥
नादं गुह्यं परं जीवं देहिभुतञ्च पञ्चमम् ।
सान्तं तत्त्वान्तभूतान्तं शिवार्णं शून्यमव्ययम् ॥ २२ ॥
सूक्ष्मत्वाद् घोषरूपत्वान्नादमित्यभिधीयते ।
चराचरादिभूतेषु जीवरूपं हृदि स्थितम् । २३ ॥
तस्माद् गुह्यमिदं प्रोक्तं परं भावात्परं स्थितम् ।
जीवः शिव इति ज्ञेयस्तस्माज्जीवः शिवः स्मृतः ॥ २४ ॥

शिवाद्यवनिपर्यन्तं देहत्वाद्देहि चोच्यते ।
आकाशत्वात् सजीवत्वादुद्भूतञ्चेति कीर्तितम् ॥ २५ ॥
तत्त्वाद्येन क्रमाद् व्योम पञ्चतत्त्वाच्च पञ्चमम् ।
सकारस्य परं तस्मात् सान्तं चेति प्रकीर्तितम् ॥ २६ ॥
कलादि च शिवान्तत्वात् तत्त्वान्तमिति कीर्तितम् ।
पृथिव्यादिक्रमाद् व्योम भूतान्तमिति कीर्तितम् ॥ २७ ॥
सर्वव्यापिप्रभावत्वाच्छिवार्णं चेति कीर्तितम् ।
वाङ्मनोऽतीतभावत्वाच्छून्यं चेति प्रकीर्तितम् ॥ २८ ॥
अक्षीणत्वान्महासेन अव्ययं चेति कीर्तितम् ।
पर्यायनामान्येतानि हकारस्य स्मृतानि च ॥ २९ ॥
कर्णिकासंस्थितं बीजमिदं च परिकीर्तितम् ।
प्रवक्ष्ये केसराणाञ्च चतुष्पात्रेषु वर्णकान् ॥ ३० ॥
आधारशक्तिकार्याणि परबिन्दुरनुक्रमात् ।
बिन्दोः पर्यायनामानि पञ्चैताति स्मृतानि च ॥ ३१ ॥
लकारमात्मबीजश्च देहिक्षेत्रज्ञभोगिनः ।
एतानि पञ्चनामानि लकारस्योदितानि च ॥ ३२ ॥
आधेयं च शिवञ्चैव करणं परनामकम् ।
नादपर्यायनामानि पञ्चैतानि स्मृतानि च ॥ ३३ ॥
विद्या बीजं क्षकारञ्च कूटवर्णं तथैव च ।
वर्णान्तं चैव पञ्चैते क्षकारस्य प्रकीर्तिताः ॥ ३४ ॥
बिन्द्वादिवेदबीजानि कर्णिकर्णा इति स्मृताः ।
सकारः शक्तिबीजञ्च प्रथमं शुक्लधातुकम् ॥ ३५ ॥
पकारो द्वितयं भानुरविमज्जादिवाकराः ।
शकारं श्री रमा लक्ष्मीरस्थि च त्रितत्रं विदुः ॥ ३६ ॥
वकारो वारुणोऽप्यापश्चतुर्थभेद ईरितः ।
लकारः पञ्चमं चैन्द्रमासञ्च धरणी मही ॥ ३७ ॥

रकारश्चानलं रक्तं षष्ठं क्रोधश्च पावकः ।
यकारश्चानिलः स्नायुः सप्तमो मरुतस्ततः ॥ ३८ ॥
मकारः कालमृत्युश्च अष्टमं मृत्युकारकम् ।
एतानि चाष्टवर्गस्य नामान्येवं स्मृतानि च ॥ ३९ ॥
द्वितीयस्तु कला ज्ञेयस्तत्कलाद्यक्षरं शृणु ।
आदिवर्णादिबीजञ्च वर्गादिश्च कलादि च ॥ ४० ॥
स्वरादिश्चैव मात्रादिरादिप्रकृतिरेव च ।
जीवादिश्च कला मात्रा आदिश्चैव स्वरस्तथा ॥ ४१ ॥
एते पर्यायनामानि अकारस्य विधीयते ।
अकारादीनि शेषाणि कलाश्चेति प्रकीर्तिताः ॥ ४२ ॥
तृतीयवर्णे वर्णाश्च विकलाश्च प्रकीर्तिताः ।
वर्णानां चैव वर्गाणामेवमेधं प्रकीर्तितम् ॥ ४३ ॥
एवमेव वर्गवर्णादि ज्ञात्वा मन्त्रान् समुद्धरेत् ।
वर्गभेदो मया प्रोक्तो मन्त्रभेदमथ शृणु ॥ ४४ ॥

इति श्रीवातुले शुद्धाख्यतन्त्रे वर्गभेदो नाम
चतुर्थः पटलः समाप्तः ॥

●

अथ

पञ्चमः पटलः

अथातः संप्रक्ष्यामि मन्त्रभेदविधिं परम्।
भुक्तिदं मुक्तिदं चैव सर्वकामार्थसिद्धिदम्॥ १॥
मन्त्रस्तु देवतारूपं मन्त्ररूपमिदं जगत्।
परार्द्धकोटिमन्त्राश्च शिववक्त्राद्विनिर्गताः॥ २॥
कर्षणादिक्रियाः सर्वा मन्त्रेणैव प्रकीर्तिताः।
तस्मान्मन्त्रक्रियार्थत्वाद्विना मन्त्रं क्रिया न च॥ ३॥
मन्त्रेण देवता स्थाप्या मन्त्रेण यजनादयः।
स्नानं मन्त्रेण कर्तव्यं मन्त्रेणाहुतितर्पणम्॥ ४॥
प्रायश्चित्तं तु मन्त्रेण दीक्षा मन्त्रेण चैव हि।
अणिमादीनि मन्त्रेग सालोक्यादिपदं तथा॥ ५॥
मन्त्रेण पातकादीनि मुच्यन्ते सर्वजन्मिनाम्।
सर्वमन्त्रक्रियाश्चैव मन्त्रं शृणु षडानन॥ ६॥
मननं सर्वपक्षेषु त्राणं संसारसागरात्।
मननत्राणधर्मत्वाद् मन्त्र इत्यभिधीयते॥ ७॥
आह्वानतः स्वनाम्ना तु जनः संन्निहितो यथा।
तथा मन्त्रप्रयोगेण शिवः सन्निहितो भवेत्॥ ८॥
तस्माद् मन्त्रं महासेन रहस्यं न प्रकाशय।
पूर्वोक्तदेशे कृत्वा तु मण्टपं लक्षणान्वितम्॥ ९॥
गोमयेनानुलिप्याथ मण्टपं धूपयेत् ततः।
प्रोक्षयेदस्त्रमन्त्रेण तन्मध्ये चक्रमालिखेत्॥ १०॥
कर्णिकां केसरांश्चैव दलान्युपदलानि वै।
क्रमेणैव तु संलिख्य चाधारादीन् प्रपूजयेत्॥ ११॥

तन्मध्ये शिवपूजादीन् प्रकुर्यात् पूर्ववत् क्रमात् ।
तच्चक्रे स्थितिमार्गेण प्रासादं तु समुद्धरेत् ॥ १२ ॥

प्राशब्दः स्याच्छिवो ज्ञेयः साशब्दः शक्तिरुच्यते ।
तत्स्वरूपं तु दःशब्दस्त्रिवर्णमभिधीयते ॥ १३ ॥

दानेन मुक्तिदो यस्मात्तस्मात् प्रासाद उच्यते ।
अज्ञानज्ञानविज्ञेयं त्रिविधं विद्यते क्रमात् ॥ १४ ॥

अन्धकारवदज्ञानं दीपवज्ज्ञानमुच्यते ।
ज्ञेयं भास्करवत् प्रोक्तमिति ज्ञानं विशिष्यते ॥ १५ ॥

शिवज्ञानात् परं ज्ञानं नहि लोकेषु विद्यते ।
प्रासादः पञ्चधा ज्ञेयः तद्भेदो वक्ष्यतेऽधुना ॥ १६ ॥

शुद्धो मूलं तथा तत्त्वमादिरात्मेति पञ्चधा ।
प्रासाद उदितास्तेषां शुद्धप्रासाद उच्यते ॥ १७ ॥

शुद्धः शिव इति प्रोक्तस्तस्माच्छुद्धः प्रकीर्तितः ।
नादाख्यं यत्परं वीजम् आदिस्वरसमन्वितम् ॥ १८ ॥

(ह इति)

तच्छुद्धमिति विज्ञेयं सर्वभूतव्यवस्थितम् ।
मुक्तिदं परमं गुह्यं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ १९ ॥

तद्विदित्वा महासेन देशिकः पाशभिद् भवेत् ।
शुद्धप्रासाद एवोक्तो मूलप्रासादमुच्यते ॥ २० ॥

सर्वेषामेव तत्त्वानां मूलं शिवमिति स्मृतम् ।
तस्माद् मूलमिति ज्ञेयं मूलमन्त्रस्तदुच्यते ॥ २१ ॥

षष्ठं त्रयोदशान्तं च पञ्चमे विनियोजयेत् ।
शिवशक्तिसमायुक्तः शिवमन्त्र इति स्मृतः ॥ २२ ॥

(ह्रों इति)

शिवमेकं विजानीयाद् मन्त्रमूर्तिः परः शिवः ।
नादो किरीटमित्युक्तो बिन्दुर्वक्त्रमुदाहृतः ॥ २३ ॥

हकारो देह इत्युक्तो द्वौ शृङ्गौ च भुजौ तथा ।
वह्निपादद्वयं विद्यान्मन्त्रमूर्तिरुदाहृता ॥ २४ ॥

स्थूलं सूक्ष्मं परं चैव त्रिविधं तु प्रकीर्तितम् ।
स्थूलं वर्णाकृति विद्याच्छूक्ष्मं तच्छब्द उच्यते ॥ २५ ॥

अकारादिक्षकारान्तं पाञ्चभौतिकमुच्यते ।
पञ्च पञ्च प्रयुञ्जीत पञ्चाशद्वर्णमीरितम् ॥ २६ ॥

अन्तर्यत् पञ्चमं बीजं तत्परं परिकीर्तितम् ।
पाञ्चभौतिकसम्बन्धः शिवाधार इति स्मृतः ॥ २७ ॥

एवं ज्ञात्वा तु मन्त्रज्ञः सर्वपापात् प्रमुच्यते ।
एवं वै पञ्चभूतत्वं जीवप्रासाद उच्यते ॥ २८ ॥

ब्रह्मादिस्तम्भपर्यन्तं जगद्योनिश्चराचरम् ।
भूतं भव्यं भविष्यद्यत् प्रासादे सर्वमुद्धृतम् ॥ २९ ॥

मूलप्रासाद इत्युक्तस्तत्त्वप्रसाद उच्यते ।
तत्त्वं चैवादिबीजं च तत्त्वान्ते विनियोजयेत् ॥ ३० ॥

(हं इति)

कार्यकारणसंयुक्तं सर्वतत्त्वात्मकं विदुः ।
तत्त्वप्रासाद इत्युक्त आदिप्रासाद उच्यते ॥ ३१ ॥

प्रथमं चतुर्दशं चैव जीवान्ते विनियोजयेत् ।
आधाराधेयसंयुक्तमादिबीजमिहोच्यते ॥ ३२ ॥

(हौं इति)

आदिशक्तिस्वब्रीजेन संयोगादभिधीयते ।
एतच्छिवमयं बीजं सर्वसिद्धिकरं परम् ॥ ३३ ॥

आदिप्रासाद इत्युक्त आत्मप्रासाद उच्यते ।
भूतान्तं तु समुद्धृत्य आदिप्रकृतिसंयुम् ॥ ३४ ॥

प्रथमं तु समुद्धृत्य षोडशस्वरसंयुतम् ।
तयोर्मध्यगता शक्तिरात्मबीजमिति स्मृतम् ॥ ३५ ॥

(हंस इति)

हृत्सरोरुहमध्ये च संस्थितं सर्वकारणम् ।
आत्मप्रामाद इत्युक्तो जीवप्रासाद उच्यते ॥ ३६ ॥

एते वै शिवबीजत्वाच्छिवमन्त्रा इनि स्मृतः ।
शुद्धादि चात्मपर्यन्तं स्थितिमार्गेण चोद्धृताः ॥ ३७ ॥
शिवमन्त्रो मया प्रोक्तः सदाशिवमथ श्रृणु ।
सादाख्यं साम्यरूपत्वात् सष्टिमार्गेण चोद्धरेत् ॥ ३८ ॥
मोक्षदश्चाभिवृद्धिश्च काम्यशान्तिकपौष्टिकाः ।
पञ्चाक्षरो मोक्षदः स्यादभिवृद्धिः षडक्षरः ॥ ३९ ॥
काम्यमष्टाक्षरं विद्याच्छान्तिकं च नवाक्षरम् ।
पौष्टिकं दशबीजं स्याद् मन्त्राः पञ्चविधाः स्मृताः ॥ ४० ॥
ईशे तुरीयमैन्द्रे च चतुर्दशकलान्वितम् ।
परापरसमायुक्तं शक्ति चाधिकलान्वितम् ॥ ४१ ॥

(हौं सदाशिवाय)

सोमान्तौ द्वित्रिकलोपेतौ सोमादित्वादिसंयुतम् ।
अयं पञ्चाक्षरो मन्त्रः परमो मुक्तिदो भवेत् ॥ ४२ ॥
भूतान्तं तु समुद्धृत्य चतुर्दशकलान्वितम् ।
कार्यकारणसंयुक्तमीशाद्यं त्रिकलान्वितम् ॥ ४३ ॥
सोमान्तं द्विकलोपेतं सोमादित्वादिसंयुतम् ।
वर्णान्तं चादिसंयुक्तं मारुतान्तं कलान्वितम् ॥ ४४ ॥

(हौं शिवाय नम इति)

एवं षडक्षरः प्रोक्तः सर्वसिद्धिप्रदायकः ।
गुह्यं चतुर्दशोपेतं शिवशक्तिसमायुतम् ॥ ४५ ॥
वर्गादिजीवसंयुक्तं शक्तिशक्तिकलान्वितम् ।
(भूतान्तमादिप्रकृति कार्यकारणसंयुतम् ।
ईशे तृतीयवर्णश्च प्रथमस्वसंयुतम् ।)
शक्तिमात्रादिसंयुक्त वारुणे तु तृतीयकम् ॥ ४६ ॥

तृतीयं चास्थिसंयुक्तं सोमान्तं द्विकलायुतम् ।
अनिलादिकलोपेतमेवमष्टाक्षरं विदुः ॥ ४७ ॥
(ह्रौं हं सदाशिवाय इति)

एवमष्टाक्षरः प्रोक्तः सर्वसम्पत्प्रदायकः ।
भूतान्तं तु समुद्धृत्य षट्पञ्चत्रिकलायुतम् ॥ ४८ ॥
कार्यकारणसंयुक्तं गुह्यं मात्रादिबिन्दुयुक् ।
शक्तिमात्रादिसंयुक्तं सप्तमान्तं विसंयुतम् ॥ ४९ ॥
अनिलान्तं त्वादियुक्तं लयादिवर्णादिकम् ।
तयोर्मध्यगतं यान्तमादिबीजेन संयुतम् ॥ ५० ॥
सप्तमाद्यं समुद्धृत्य षट्पञ्चककलायुतम् ।
बिन्दुनादसमायुक्तं नवाक्षरमिदं विदुः ॥ ५१ ॥
(ह्रौं हं स्वं मं क्षं रं तं यं मं इति)

एतदेव परं बीजं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
परात्परं समुद्धृत्य चैन्द्रे चतुर्दशान्वितम् ॥ ५२ ॥
कार्यकारणसंयुक्तं शक्तिबीजसमन्वितम् ।
ईशे तृतीयक चाधोपरि द्वितीयजीवयुक् ॥ ५३ ॥
सप्तमान्तं विसंयुक्तं षष्टान्तं षट्कलान्वितम् ।
भूतान्तं तु समुद्धृत्य वह्नि तस्योपरि न्यसेत् ॥ ५४ ॥
पञ्चमान्तं कलोपेतं भान्तमेकारसंयुतम् ।
पञ्चपञ्चमादिश्यात् षष्ठान्तं सप्तमादिकम् ॥ ५५ ॥
(ह्रौं सं सं ष्वं मूं ह्रूं में नं मं इति)

बिन्दुनादसमायुक्तं दशबीजमिहोच्यते ।
एते पञ्चविधाः प्रोक्ता मन्त्राः पञ्चाक्षरादयः ॥ ५६ ॥
सदाशिवमिदं प्रोक्तं महेशं शृणु षण्मुख ।
महेशं रुद्रमूर्तिः स्यात् संहारेण समुद्धरेत् ॥ ५७ ॥
तस्य भेदस्त्रिधा ज्ञेयः सृष्टिस्थितिलयं तथा ।
भमौ ततीयमदधृत्य सलिलाद्यसमन्वितम् ॥ ५८ ॥

भूमौ नवार्णकं विद्यादम्बरे तु षडक्षरम् ।
आधाराधेयसंयुक्तं सृष्टिबीजमिहोच्यते ॥ ५९ ॥

(हं रं एं इति)

पृथिव्यां तु तृतीयं स्याद्व्योमान्तेन समन्वितम् ।
शक्ति तस्योपरि न्यस्य तद्वर्गे तुर्यकं भवेत् ॥ ६० ॥

लयाद्यमबलं चैव पार्थिवान्तेन संयुतम् ।
व्योमे षष्ठसमायुक्तं कार्यकारणसंयुतम् ॥ ६१ ॥

(हं सं क्षं रं यं एं इति)

स्थितिबीजमिदं प्रोक्तं संहारश्चाधुनोच्यते ।
वह्निवर्गे तृतीयं स्याद् व्योमान्तेन समायुयम् ॥ ६२ ॥
शिवशक्तिसमायुक्तं पृथिव्यादि समुद्धरेत् ।
द्वितीयमाद्यमुद्धत्य तेजो वै पार्थिवान्तकम् ॥ ६३ ॥
व्योमो षड्वर्णकं बिन्दुः संहारं चेति कीर्तितम् ।

(हं क्षं मं रं सं इति)

महेश एवमाख्यतं शक्तिबीजमथ शृणु ॥ ६४ ॥
शक्तिबीजं समुद्धृत्य विकृतिर्वह्निसंयुतम् ।
बिन्दुनादसमायुक्तं शक्तिबीजमिदं परम् ॥ ६५ ॥

(स्त्रां इति)

प्रथमा शक्तिरित्युक्ता द्वितीया शक्तिरुच्यते ।
नादाद्यन्तं समुद्धृत्य षष्ठं मायासमन्वितम् ॥ ६६ ॥

(स्त्रीँ इति)

बिन्दुनादसमायुक्तं तृतीया शक्तिरीरिता ।
तत्त्वान्तद्यं धरावह्निबिन्दुनादसमायुतम् ॥ ६७ ॥

(स्त्रुँ इति)

तृतीया शक्तिरित्युक्ता जीवाद्यं वह्निसंयुतम् ।
कलाद्वादशकाभेद्यं बिन्दुनादसमायुतम् ॥ ६८ ॥

(स्तैं इति)

चतुर्थी शक्तिरित्युक्ता भूताद्यं वह्निसंयुतम् ।
चतुर्दशकलोपेतं बिन्दुनादसमन्वितम् ॥ ६९ ॥

पञ्चमी शक्तिरित्युक्ता शिवाङ्गमिब चोद्धृतम् ।
एतासां पञ्चशक्तीनामुमाशक्त्यादिरेव च ॥ ७० ॥

वह्नेर्गणं समुद्धृत्य वह्निमायासमन्वितम् ।
बिन्दुनादसमायुक्तं गौरीबीजमिदं परम् ॥ ७१ ॥

(स्त्रीं इति)

अन्यासां चैव शक्तीनां स्वनामाद्यक्षरेण तु ।
कार्यकारणसंयुक्तं सर्वेषां शक्तिरुच्यते ॥ ७२ ॥

मन्त्र एवं समाख्यातो यन्त्रन्यासमथ शृणु ।
अङ्गस्य स्थापनाकाले तत्त्वमन्त्राश्च विन्यसेत् ॥ ७३ ॥

कुम्भेष्वन्तर्गतान् मन्त्रान् लिङ्गवत् पूरिताम् वहिः ।
तयोर्योगे क्रियावस्था सुप्रतिष्ठेति कीर्तिताः ॥ ७४ ॥

प्राणप्रकृतियोगं तु ज्ञात्वा स्थापनमारेत् ।
प्राणो मन्त्र इति प्रोक्तः प्रकृतिर्मूर्तिरीरिता ॥ ७५ ॥

मन्त्रमूर्तिसुसंयोगः शिवसान्निध्यकारणम् ।
तस्माद् वै मन्त्रं मूर्तिं च अङ्गमध्ये तु विन्यसेत् ॥ ७६ ॥

मूर्ध्नि प्रविन्यसेच्छुद्धं मूलं स्यात् सूत्रमध्यके ।
तत्त्वं तु दक्षिणे प्रोक्तमादिवामे तु विन्यसेत् ॥ ७७ ॥

आत्मानं सूत्रमूले तु विन्यसेत्तु विचक्षणः ।
मन्त्रन्यासो मया प्रोक्तस्तत्त्वन्यासमथ शृणु ॥ ७८ ॥

कर्मेशं पुरतो न्यस्य कर्तुः सव्ये तु विन्यसेत् ।
मूर्तिं च पश्चिमे न्यस्य स्वमूर्तिं चोत्तरे न्यसेत् ॥ ७९ ॥

ऊर्ध्वं तु शिवसादाख्यं पञ्चतत्त्वानि विन्यसेत् ।
पञ्चमूर्तिमयं देवं सर्वकारणकारणम् ॥ ८० ॥

अष्टत्रिंशत्कलोपेतं ध्यात्वा तु सकलीकृतम् ।
आवाहयेत् तोत देवं पञ्चाक्षरविधानतः ॥ ८१ ॥
षडक्षरेण मन्त्रेण स्थापयेच्च विचक्षणः ।
अष्टाक्षरेण मन्त्रेण सन्निधीकरणं कुरु ॥ ८२ ॥
निवेदय नबार्णेन दशबीजेन पूजय ।
पाद्यगन्धादिकं दद्याद् ब्रह्माङ्गैः सह बुद्धिमान् ॥ ८३ ॥
सकलस्थापनाकाले तद्बीजं हृदि विन्यसेत् ।
सृष्टिमूर्तिन्र्यसेत् सृष्टिं स्थितिमूर्तिन्र्यसेत् स्थितिम् ॥ ८४ ॥
संहारे संहृतं बीजं विन्यसेत्तु विचक्षणः ।
शक्तीरां स्थापनाकले तद्बीजं हृदि विन्यसेत् ॥ ८५ ॥
क्रिमाशरीरमित्युक्तं मन्त्रो जीवमिति स्मृतः ।
क्रियामन्त्रप्रयोगो हि शिवसान्निध्यकारणम् ॥ ८६ ॥
तस्माज्जीवं शरीरं च ज्ञात्वा सर्वं समाचरेत् ।
मन्त्रभेदो मया प्रोक्तः प्रणवं च ततः शृणु ॥ ८७ ॥

इति श्रीतुले शुद्धाख्यतन्त्रे मन्त्रभेदो नाम
पञ्चमः पटलः समाप्तः ॥

अथ
षष्ठः पटलः

अथ प्रणवभेदं तु प्रवक्ष्यामि समासतः ।
सर्वपापहरं चैव मुक्तिदं परमं नृणाम् ॥ १ ॥
प्रणवं सर्वदेवाख्यं सर्वदेवमयं विदुः ।
सर्वेषां चैव मन्त्राणां प्रणवः प्राण उच्यते ॥ २ ॥

प्रणवः पञ्चभेदः स्यात् तद्भेदं शृणु षण्मुख ।
साकल्यं शाम्भवं सौख्यं सावश्यं सायुजं तथा ॥ ३ ॥
एते वै पञ्चभेदास्तु पञ्चवक्त्रेषु चोद्धृताः ।
अकारञ्च उकारञ्च मकारञ्च त्रिधा भवेत् ॥ ४ ॥

तृतीयान्तर्गतं नादं चतुर्थं मुक्तिकारणम् ।
अकारो दक्षिणांशः स्याद्वामांशः स्यादुकारकः ॥ ५ ॥

मकारो मध्यदेशः स्यात् तस्मात् त्रिप्रणवात्मकम् ।
हकारस्तस्य मध्ये तु संस्थितः सर्वकारणम् ॥ ६ ॥
अकारो ब्रह्मदैवत्यमुकारो विष्णुदैवतम् ।
मकारो रुद्रदैवत्यमोङ्कारश्च सदाशिवः ॥ ७ ॥

नादं शिवमयं विद्यात् पञ्चदेवात्मकं विदुः ।
अकारोकारसंयोगादोकारस्वर उच्यते ॥ ८ ॥

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म वदन्ति शिवयोगिनः ।
पञ्चमं प्रथमोपेतं तृतीयान्तर्गतं परम् ॥ ९ ॥

(अ उ म ह इति)

साकल्यमिति विज्ञेयं पूर्ववक्त्रे तु जायते ।
आदिबीजं चतुर्थान्तं भान्तं भूतान्तसंयुतम् ॥ १० ॥

चतुर्थस्वरसंयुक्तं शाम्भवं दक्षिणानने ।

(अ उ म ह् इ इति)

वर्गादिपञ्चमं चैव षष्ठान्तं जीवसंयुतम् ॥ ११ ॥

तृतीयस्वरसंयुक्तं सौख्यं वै पश्चिमानने ।

(अ उ म ह् ई इति)

अकारं पञ्चमान्तं च मकारं तत्त्वबीजकम् ॥ १२ ॥

एकादशकलोपेतं सावश्यं सौम्यवक्त्रके ।

(अ उ म ह् ए इति)

आदिप्रकृतिवर्णं च पञ्चमान्तं षडन्तकम् ॥ १३ ॥

गुह्यं चतुर्दशोपेतं सायुज्यं चोर्ध्ववक्त्रके ।

(अ उ म ह् औ इति)

साकल्यं रक्तवर्णं स्यात् छन्दोऽनुष्टुप् प्रकीर्तितम् ॥ १४ ॥

ऋषिः सनत्कुमारस्तु पार्थिवं भूतमुच्यते ।
तत्त्वं कर्मेशमित्युक्तमीशानश्चाधिदैवतम् ॥ १५ ॥

मात्राचतुर्भिः संयुक्तं सर्वसिद्धिकरं परम् ।

शाम्भवं त्वञ्जनप्रख्यं त्रिष्टुप् छन्दः प्रकीर्तितम् ॥ १६ ॥

भारद्वाज ऋषिर्ज्ञेयः सलिलं भूतमुच्यते ।
तत्त्वं कर्तुं समाख्यातमीश्वरस्त्वधिदैवतम् ॥ १७ ॥

पञ्चमात्रासमोपेतं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
सौख्यं गोक्षीरवर्णं स्याद् बृहती छन्द ईरितम् ॥ १८ ॥

विश्वामित्र ऋषिर्ज्ञेयस्तेजो भूतमिति स्मृतम् ।
सर्वं वै तत्त्वमित्युक्तं ब्रह्मा स्यादधिदैवतम् ॥ १९ ॥

चतुर्मात्रासमायुक्तं सर्वसम्पत्करं परम् ।
सावश्यं कुङ्कुमाभं स्याज्जगती छन्द ईरितम् ॥ २० ॥

गौतमोऽस्य ऋषिर्ज्ञेयो मारुतं भूतमुच्यते ।
मूर्तं वै तत्त्वमित्युक्तमीशस्तस्याधिदैवतम् ॥ २१ ॥

पञ्चमात्रासमोपेतं सर्ववश्यकरं परम् ।
सायुज्यं स्फटिकाभं स्याज्जगती छन्द ईरितम् ॥ २२ ॥

अगस्त्योऽस्य ऋषिर्ज्ञेयो व्योम भूतमुदाहृतम् ।
सादाख्यतत्त्वमित्युक्तमधिदैवं सदाशिवम् ॥ २३ ॥

पञ्चमात्रासमोपेतं सायुज्यपदमाप्नुयात् ।
प्रणवः सर्ववर्णानां शिवबीजमिति स्मृतः ॥ २४ ॥

बिन्दुनादप्रकारेण प्रणवाकृतिरीरिता ।
सृष्टिस्थितिनिमित्ताय उच्चारणमधोमुखम् ॥ २५ ॥

साकल्यादिश्च प्रणवः क्रमेण परिकीर्तितः ।
उक्तः प्रणवभेदश्च ब्रह्मभेदमथ शृणु ॥ २६ ॥

इति श्रीवातुले शुद्धाख्यतन्त्रे प्रणवभेदो नाम
षष्ठः पटलः समाप्तः ॥

अथ

सप्तमः पटलः

अथ वक्ष्ये विशेषेण ब्रह्मभेदविधिं परम्।
बृहत्वाद् बृंहणत्वाच्च ब्रह्मेति परिकीर्तितम्॥ १॥
ब्रह्मत्वमिति विज्ञेयं भवेत् तद्ब्रह्म पञ्चधा।
पञ्चब्रह्मप्रकारेण पञ्चविंशतिभेदकः॥ २॥
एभिर्भेदैर्युतं पञ्चविंशतितत्त्वसंयुतम्।
इत्येतत्पञ्चभेदत्वाद् ब्रह्मपञ्चकमीरितम्॥ ३॥
मूर्तिब्रह्म भवेत्पूर्वं तत्त्वब्रह्म द्वितीयकम्।
भूतब्रह्म तृतीयं स्यात् पिण्डब्रह्म चतुर्थकम्॥ ४॥
पञ्चमं च कलाब्रह्म ब्रह्मपञ्चकमीरितम्।
पञ्चानां ब्रह्मणामेषां लक्षणं वक्ष्यतेऽधुना॥ ५॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च मूर्तयः प्रणवाधिपाः।
एतत्प्रणवरूपं तु मूर्तिरूपमुदाहृतम्॥ ६॥
साकल्यादिस्तु यत्पञ्च मूर्तिब्रह्म तदुच्यते।
एतेषां चैव तत्त्वानां शिवतत्त्वं प्रभुः स्मृतम्॥ ७॥
एतच्छिवमयं बीजं शिवार्णं चेति कीर्तितम्।
तस्माच्छुद्धादि चात्मान्तं तत्त्वब्रह्म प्रकीर्तितम्॥ ८॥
प्रथमं मांसबीजं स्याद् द्वितीयं मेदसो भवेत्।
तृतीयं षष्ठबीजं स्याच्चतुर्थं सप्तमं तथा॥ ९॥
पञ्चमं पञ्चमं विद्यात् पाञ्चभौतिकमुच्यते।
मांसं वै पार्थिवं बीजं मेदसो ह्यपि उच्यते॥ १०॥

षष्ठं तेजो विनिर्दिष्टं सप्तमं मारुतात्मकम् ।
पञ्चमं व्योमबीजं स्याद् भूतब्रह्मेति कीर्तितम् ॥ ११ ॥

सप्तके प्रकृतौ वर्णे तुरीयं पञ्चमं त्यजेत् ।
शेषेषु पञ्चवर्णेषु पञ्चमं च प्रयोजयेत् ॥ १२ ॥

बिन्दुनादसमायुक्तं पञ्चवर्णेष्वनुक्रमात् ।
तेषां नामानि वक्ष्यामि समासाच्छृणु षण्मुख ॥ १३ ॥

सद्योजातं तथा पूर्वं वामदेवं द्वितीयकम् ।
अघोरं च तृतीयं स्याच्चतुर्थं पुरुषं तथा ॥ १४ ॥

ईशानं पञ्चमं विद्यादेवं मुख्याः प्रकीर्तिताः ।
प्रणवादिचतुर्थ्यन्तं स्वनामपदमध्यगम् ॥ १५ ॥

नमस्कारान्तसंयुक्तान् सद्यादीन् योजयेत् क्रमात् ।
शिवार्णे जीववर्णानां संयोगात् पिण्डमुच्यते ॥ १६ ॥

कर्मेशं पिण्डरूपत्वात् पिण्डब्रह्मेति कीर्तितम् ।
ईशानः पुरुषश्चैव अघोरो वामदेवकः ॥ १७ ॥

सद्योजातश्च पञ्चैते कलाब्रह्म प्रकीर्तिताः ।
ईशानस्य कला पञ्च पुरुषस्य चतुष्कलाः ॥ १८ ॥

अघोरस्य कलाश्चाष्टौ वामदेवे त्रयोदश ।
सद्यस्याष्टकला ज्ञेया अष्टविंशत्कलाः स्मृताः ॥ १९ ॥

ईशानः । सर्वविद्यानां प्रथमं परिकीर्तितम् ।
ईश्वरः सर्वभूतानां द्वितीयं चेति कीर्तितम् ॥ २० ॥

ब्रह्माधिपतिश्चैव ब्रह्मणोऽधिपतिस्तथा ।
ब्रह्मेतीदं तृतीयं स्याच्छिवो मेऽस्तु चतुर्थकम् ॥ २१ ॥

सदाशिवोमिति ज्ञेयं पञ्चमं परिकीर्तिम् ।
एते चेशानरूपाश्च पञ्चसंख्याः प्रकीर्तिताः ॥ २२ ॥

तत्पुरुषाय विद्महे प्रथमं परिकीर्तितम् ।
महादेवाय धीमहि तन्नो चेति द्वितीयकम् ॥ २३ ॥

तन्नो रुद्रश्च तृतीयं स्याच्चतुर्थं तु प्रचोदयात्।
एवं तत्पुरुषस्यैव चतस्रश्च कलाः स्मृताः॥ २४॥

अघोरेभ्यस्तथा पूर्वं घोरेभ्यश्च द्वितीयकम्।
घोरघोरस्तृतीयं स्यात् तरेभ्यश्च चतुर्थकम्॥ २५॥

सर्वतः पञ्चमं विद्यात् षष्ठं सर्वमुदाहृतम्।
सर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु सप्तमं चेति कीर्तितम्॥ २६॥

अष्टमं रुद्ररूपेभ्यो अघोरस्याष्टकं स्मृतम्।
प्रथमं वामदेवाय ज्येष्ठायेति द्वितीयकम्॥ २७॥

तृतीयं रुद्राय नमः कालायेति चतुर्थकम्।
पञ्चमं कल इत्युक्तं विकर्णाय नमस्तु षट्॥ २८॥

सप्तमं बलमित्युक्तमष्टमं विकरणाय च।
नवमं बलमित्युक्तं दशमं प्रमथाय च॥ २९॥

सर्वभूतदमनाय नमश्चैकादशं स्मृतम्।
द्वादशञ्च मनश्चेति उन्मनाय त्रयोदशम्॥ ३०॥

एतास्त्रयोदश कला वामदेवेति कीर्तिताः।
सद्योजातं प्रपद्यामि प्रथमं परिकीर्तितम्॥ ३१॥

द्वितीयं सद्योजाताय वै नमश्चेति कीर्तितम्।
तृतीयं च भवे चैव भवे चेति चतुर्थकम्॥ ३२॥

पञ्चमं नातिभवे षष्ठं चेति भवस्व माम्।
सप्तमं तु भवं विद्यादुद्भवायाष्टमं भवेत्॥ ३३॥

एवमष्टकलाः प्रोक्ताः सद्योजात उदाहृताः।
ईशानादीनि सद्यान्तान्नष्टत्रिंशतकलाः स्मृताः॥ ३४॥

कलाब्रह्ममिति प्रोक्तं पञ्चब्रह्माणि चोच्यते।
मूर्त्यादिककलान्तानां लक्षणं पञ्च ते क्रमात्॥ ३५॥

ईशानश्चेश्वरो ब्रह्मा शिवश्चेति सदाशिवः।
पञ्चमूर्त्याकृतिर्यद्यत् तत्तद् वै प्रणवाकृति॥ ३६॥

सद्यादीनां च पञ्चानां क्रमेण परिलक्ष्यते ।
कर्म कर्तृ समूर्तिश्च अमूर्तिश्च शिवस्तथा ॥ ३७ ॥
पञ्चासादाख्यतत्त्वानां यद्भावं विन्यसेत् क्रमात् ।
आत्मादीनि च तद्भावं शुद्धान्तानि च लभ्यते ॥ ३८ ॥
पार्थिवं पीतवर्णं स्याच्छुक्लाभा ह्याप उच्यते ।
रक्ताभं तैजसं प्रोक्तं कृष्णाभमनिलं विदुः ॥ ३९ ॥
व्योमधूम्रनिभं विद्यादेवं भूताकृतिर्भवेत् ।
गोक्षीरं शङ्खवर्णाभं जटामुकुटमण्डितम् ॥ ४० ॥
चतुर्वक्त्रं चतुर्बाहुं नेत्रद्वादशभिर्युतम् ।
सर्वाभरणसंयुक्तमेवं सद्य उदाहृतम् ॥ ४१ ॥
जपापुष्पनिभं वामं जटामुकुटमण्डितम् ।
चतुर्वक्त्रसमायुक्तं चतुर्दोर्भिः समन्वितम् ॥ ४२ ॥
नेत्रैर्द्वादशभिर्युक्तं सर्वावयवसंयुतम् ।
रक्तवस्त्रधरं देवं रक्तवस्त्रोत्तरीयकम् ॥ ४३ ॥
दक्षिणेऽभयटङ्कं च वामे वरदशूलधृत् ।
रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तमाल्यैरलङ्कृतम् ॥ ४४ ॥
सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम् ।
वामदेव इति प्रोक्तं सर्ववश्यकरं पदम् ॥ ४५ ॥
भिन्नाञ्जनसमप्रख्यमघोरं रौद्ररूपकम् ।
चतुर्वक्त्रं चतुर्बाहुं जटामुकुटमण्डितम् ॥ ४६ ॥
द्वादशाक्षिसमायुक्तं दंष्ट्राकरालमास्यकम् ।
व्याघ्रचर्माम्बरधरं व्याघ्रचर्मोत्तरीयकम् ॥ ४७ ॥
पादनूपुरसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम् ।
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गं दिव्यपुष्पैरलङ्कृतम् ॥ ४८ ॥
टङ्कशूलसमायुक्तं वरदाभयसंयुतम् ।
सर्वावयवसंयुक्तं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ ४९ ॥

अघोररूपमेवं हि सर्वशत्रुजयं भवेत्।
पुरुषं कुङ्कुमाभं स्याच्चतुर्वक्त्रं चतुर्भुजम् ॥ ५० ॥
जटामुकुटसंयुक्तं नेत्रैर्द्वादशभिर्युतम्।
सर्वावयवसंयुक्तं पीताम्बरधरं परम् ॥ ५१ ॥
पीतवस्त्रोत्तरीयं च सर्वाभरणभूषितम्।
सव्ये तु टङ्कमभयं शूलं वरदमन्यके ॥ ५२ ॥
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गं दिव्यपुष्पैरलङ्कृतम्।
एवं तत्पुरुषं विद्यात् सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ५३ ॥
ईशानं स्फाटिकाभं स्याद् जटामुकुटमण्डितम्।
चतुर्वक्त्रसमायुक्तं द्वादशाक्षिसमन्वितम् ॥ ५४ ॥
चतुर्भुजसमायुक्तं सर्वलक्षणसंयुतम्।
शुक्लाम्बरधरं सौम्यं शुक्लवस्त्रोत्तरीयकम् ॥ ५५ ॥
टङ्कशूलसमायुक्तं वरदाभयसंयुतम्।
वर्सावयवसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम् ॥ ५६ ॥
दिव्यपुष्पैरलङ्कृत्य दिव्यगन्धानुलेपितम्।
एवमीशानरूपं तु सद्यो मोक्षप्रदायकम् ॥ ५७ ॥
अघोरं रौद्रमित्युक्तं शेषं सौम्यमुदाहृतम्।
सद्यो मूर्तं विजानीयादमूर्तं वामदेवकम् ॥ ५८ ॥
अघोरं कर्तृरूपं स्यात् कर्म तत्पुरुषं भवेत्।
शिवसादाख्यमीशानं पञ्चतत्त्वात्मकं विदुः ॥ ५९ ॥
पञ्चमूर्त्यात्मकं यत्तत् पिण्डब्रह्माकृतिर्भवेत्।
एवं पिण्डाकृतिः प्रोक्ता कलारूपमिहोच्यते ॥ ६० ॥
शङ्खकुन्देन्दुवर्णं च स्फाटिकं क्षीरसन्निभम्।
ईशानस्य कलानां तु पञ्चवर्णं प्रशस्यते ॥ ६१ ॥
रक्तासितश्वेतपीतास्तत्पुरुषकलाः स्मृताः।
अञ्जनारुणपीतं च श्यामं नीलसितारुणम् ॥ ६२ ॥

काञ्चनं चाष्टवर्णानि अघोरस्य कलाः स्मृताः ।
जपापीताञ्जनश्यामं शुक्लं श्यामाञ्जनारुणम् ।। ६३ ।।
अञ्जनं स्फाटिकं रक्तं नीलं मकरतं तथा ।
एते वामकलानां तु त्रयोदशनिभाः स्मृताः ।। ६४ ।।
रक्तं सितं तथा नीलं कृष्णपीतं सकुङ्कुमम् ।
भिन्नाञ्जनारुणं चैव त्वष्टौ सद्यःकलाः स्मृताः । ६५ ।।
कलारूपाणि सर्वाणि त्रिनेत्राश्च चतुर्भुजाः ।
अभयं वरदं चैव शूलं परशुधारिणः ।। ६६ ।।
सर्वलक्षणसंयुक्ताः सर्वाभरणभूषिताः ।
कलारूपेषु वामाद्याः शक्तयः पञ्च संस्थिताः ।। ६७ ।।
अष्टत्रिंशतकलानां तु अष्टत्रिंशच्च शक्तयः ।
एवं शक्तिसमोपेतं न्यासकाले तु विन्यसेत् ।। ६८ ।।
मूर्तिस्तत्त्वं तथा भूतं पिण्डं चैव कला तथा ।
पञ्चब्रह्माणि चैतानि सर्वकार्येषु योजयेत् ।। ६९ ।।
ब्रह्मभेदो मया प्रोक्तः अङ्गभेदमथ शृणु ।

इति श्रीवातुले शुद्धाख्यतन्त्रे ब्रह्मभेदो नाम
सप्तमः पटलः समाप्तः ।।

अथ

अष्टमः पटलः

अतः परं प्रवक्ष्यामि अङ्गभेदविधिं परम्।
अङ्गं षड्भेदमित्युक्तं तस्मादङ्गं तदुच्यते ॥ १ ॥
षडङ्गमङ्गभेदाश्च षट्त्रिंशदिति ते स्मृताः।
एभिर्भेदैः समायुक्तमङ्गं षट्त्रिंशदुच्यते ॥ २ ॥
तेषां तु लक्षणं वक्ष्ये समासाच्छृणु षण्मुख।
शिवाङ्गं चैव भूताङ्गं कूटाङ्गं च तथैव च ॥ ३ ॥
विद्याङ्गं चैव शक्त्यङ्गं सामान्याङ्गं तथैव च।
एतानि चाङ्गनामानि शिवाङ्गानि षडानन ॥ ४ ॥
एतेषां चैव अङ्गानां शिवाङ्गं पूर्वमुच्यते।
नवार्णविकृतिष्वासु तूर्यं पञ्चममष्टकम् ॥ ५ ॥
त्रीणि वर्णानि संत्यज्य शेषषट्परवर्णयुक्।
कार्यकारणसंयुक्तं सर्वेषां च षडानन ॥ ६ ॥
प्रथमं हृदयं विद्याद् द्वितीयं तु शिरो भवेत्।
तृतीयं तु शिखा विद्याच्चतुर्थं कवचं भवेत् ॥ ७ ॥
पञ्चमं नेत्रत्रयं स्यादस्त्रं षष्टमुदाहृतम्।
शिवाङ्गनामान्येतानि कीर्तितानि क्रमाद्विदुः ॥ ८ ॥
आदौ प्रणवमुच्चार्य शिवार्णं तदनन्तरम्।
अभिधानं चतुर्थ्यन्तं नमस्कारादिभिर्युतम् ॥ ९ ॥
नमोऽन्तं हृदयं विद्यात् स्वाहान्तं शिरसो भवेत्।
वषडन्तं शिखा ज्ञेया हूंकारं कवचस्य तु ॥ १० ॥

वौषड् नेत्रत्रयं विद्यात् फूत्कारं चास्त्रमन्त्रतः।
एवं शिवाङ्गमित्युक्तं भूताङ्गञ्च तथोच्यते ॥ ११ ॥

पार्थिवं जीवसंयुक्तं द्वितीयस्वरसंयुतम्।
बिन्दुनादसमायुक्तं प्रथमं बीजमुच्यते ॥ १२ ॥

शिवार्णं जीवनोपेतं चतुर्थस्वरभूषितम्।
शिवशक्तिसमायुक्तं द्वितीयं बीजमुच्यते ॥ १३ ॥

पञ्चमं षष्ठसंयुक्तं पञ्चमान्तकलान्वितम्।
आधाराधेयसंयुक्तं तृतीयं बीजमुच्यते ॥ १४ ॥

भूतान्तमलिनोपेतं पञ्चसप्तकलान्वितम्।
परापरसमायुक्तं चतुर्थं बीजमुच्यते ॥ १५ ॥

तत्त्वान्तं तत्त्वसंयुक्तं चतुर्दशकलान्वितम्।
कार्यकारणसंयुक्तं पञ्चमं बीजमुच्यते ॥ १६ ॥

शक्त्यन्तं शिवसंयुक्तमादिबीजं कलान्वितम्।
तयोर्मध्यगतो बिन्दुः षष्ठं बीजमुदाहृतम् ॥ १७ ॥

पञ्चभिर्ग्रन्थिभिर्युक्तं छेद्यमन्त्रेण चात्मनि।
एवं भूताङ्गमाख्यातं कूटाङ्गानि ततः शृणु ॥ १८ ॥

प्रथमस्य द्वितीयं तु चतुर्थं पञ्चमान्तकम्।
रुद्रान्तं रुद्रतुरीयञ्च अन्तं कूटाक्षरेण युक् ॥ १९ ॥

बिन्दुनादसमायुक्तं कूटाङ्गमिदमीरितम्।
एवं कूटाङ्गमित्युक्तं विद्याङ्गानि ततः शृणु ॥ २० ॥

प्राकारं तु समुद्धृत्य तकारं तु समुद्धरेत्।
दकारोपेतमाकारं यकारञ्च नमोऽन्तकम् ॥ २१ ॥

एवं विद्याङ्गमाख्यातं प्राकारञ्च समुद्धरेत्।
नकारं चैव वाकारं तकारेण मकारयुक् ॥ २२ ॥

नमोऽन्तं तु समुद्धृत्य स्वाहान्तं शिरसा विदुः।
शिकारं चैव वाकारं वषड्ढुङ्कारमेव च ॥ २३ ॥

वषट्कारसमायुक्तं शिखाबीजमुदाहृतम् ।
शिकारं चैव वाकारं तकारेण मकारयुक् ॥ २४ ॥
तकारञ्च मकारञ्च टकारञ्च समुद्धरेत् ।
तकारञ्च हकारञ्च अनुस्वारंञ्च सर्वतः ॥ २५ ॥
जकारे तु समायुक्तं भकारञ्च फकारकम् ।
रकारञ्च शिकारञ्च मकारञ्च समुद्धरेत् ॥ २६ ॥
अकारञ्च वकारञ्च नकारञ्च भकारयुक् ।
वह्निशेखरयंयुक्तं यकारं तु मकारयुक् ॥ २७ ॥
यौकारञ्च ककारञ्च अनुस्वारसमायुतम् ।
ककारञ्च मकारञ्च फकारञ्च सिकारकम् ॥ २८ ॥
अनुस्वारसमायुक्तं गकारं च भकारकम् ।
ऋकारञ्च भकारञ्च मकारेण समुचचयम् ॥ २९ ॥
अकारं चैव वाकारं हकारञ्च भकारकम् ।
शिकारञ्च लकारञ्च मकारं हारमेव च ॥ ३० ॥
क्षकारञ्च उकारञ्च ककारञ्च एकारकम् ।
नकारेण समायुक्तो बन्धशब्द उदाहृतः ॥ ३१ ॥
पूर्णं चैव तु पूर्णञ्च कह कह समायुतम् ।
किरिद्वन्द्वसमायुक्तं सूक्ष्मसूक्ष्मसमायुतम् ॥ ३२ ॥
इकारञ्च दकारञ्च रिकारो हारमेव च ।
चकारञ्च भकारञ्च उकारञ्च प्रकाशकम् ॥ ३३ ॥
विकारञ्च शकारञ्च स च चैव ढुकारकम् ।
फट्कारस्तम्भकश्चैव स्तम्भशब्दस्तथैव च ॥ ३४ ॥
यकारं चैव ढुंकारं फट्कारेण समायुतम् ।
एवं कवचमाख्यातं सर्वरक्षाकरं भवेत् ॥ ३५ ॥
प्रकारञ्च स्फुकारञ्च रकारञ्च स्फुकारकम्
रकारं चैव विन्यस्य घोरं चैव तु घोरकम् ॥ ३६ ॥

तकारं चैव विन्यस्य मकारं चैव विन्यसेत्।
तकारञ्च मकारञ्च ऋकारञ्च फकारकम् ॥ ३७ ॥

चटश्चैव चटश्चैव प्रचटः प्रचटस्तथा।
कहश्चैव कहश्चैव वमश्चैव वमस्तथा ॥ ३८ ॥

घातय घातय चैव हुंफट्कारसमायुतम्।
स्वरेणैव सुसंयुक्तो मन्त्रो हेति उदाहृतः ॥ ३९ ॥

एवं विद्याङ्गमाख्यातं शक्त्यङ्गानि ततः शृणु।
आधारशक्तिबीजं च बिन्दुनादसमन्वितम् ॥ ४० ॥

प्रथमं बीजमित्युक्तं पीताभं शक्तिबीजकम्।
बिन्दुनादसमायुक्तं द्वितीयं बीजमुच्यते ॥ ४१ ॥

उकारं शक्तिबीजं च बिन्दुनादसमन्वितम्।
तृतीयं बीजमित्युक्तमैकारं शक्तिसंयुतम् ॥ ४२ ॥

कार्यकारणसंयुक्तं चतुर्थं बीजमुच्यते।
शक्तिश्चतुर्दशोपेता शिवशक्तिसमायुता ॥ ४३ ॥

पञ्चमं बीजमाख्यातं स्वरान्तं शक्तिसंयुतम्।
वर्णं चैव सुसंयुक्तं षष्ठकं बीजमुच्यते ॥ ४४ ॥

एवं शक्त्यङ्गमाख्यातं सामान्याङ्गमथोच्यते।
आदिसर्गेऽश्विनौ वेदा रसो भानुर्मनुस्तथा ॥

ब्रह्मविष्णुसुरेन्द्राश्च आदित्येन्दुगुहास्तथा ॥ ४६ ॥

मदनक्षेत्रविघ्नेशाश्चाष्टमूर्तिवसुस्तथा।
विघ्नेशाश्च गणेशाश्च लोकपालायुधास्तथा ॥ ४७ ॥

सिद्धविद्याधराश्चैव गन्धर्वाश्चाप्सरास्तथा।
यक्षकिन्नरभूताश्च ऋषयः खेचरास्तथा ॥ ४८ ॥

अन्येषां सर्वदेवानां स्वनामाद्यक्षरं तथा।
सामान्येषु समायोगाद्बीन्दुनादसमन्वितम् ॥ ४९ ॥

तेषामङ्गानि चोक्तानि मूलं तद्बीजमुच्यते ।
सामान्याङ्गमिदं प्रोक्तं तेषां वर्णमथोच्यते ।। ५० ।।
हृदयं शुक्लवर्णं स्यात् पीतवर्णं शिरस्तथा ।
शिखां रक्तसमां विद्यात् कवचं स्फटिकप्रभम् ।। ५१ ।।
नेत्रं श्यामनिभं विद्यात् कृष्णाभं चास्त्रमुच्यते ।
एवं शिवाङ्गमाख्यातं भूताङ्गं च तथोच्यते ।। ५२ ।।
पीतं शुक्लारुणं चैव कृष्णं धूम्रं च पावकम् ।
भूताङ्गानां तु वर्णानि समासात् कीर्तितानि तु ।। ५३ ।।
श्वेतं रक्तं तथा नीलं कुङ्कुमं पीतमञ्जनम् ।
कूटाङ्गानां तु वर्णानि समासाद् उदितानि तु ।। ५४ ।।
जपाकुसुमकुन्दाभं पावकं चेन्द्रनीलकम् ।
सिन्दूरं हरितालं च विद्याङ्गानि नभस्तथा ।। ५५ ।।
पीतं श्यामं तथा रक्तं कृष्णं मरकतं तथा ।
एतैरेव सवर्णानि शक्त्यङ्गानां क्रमेण तु ।। ५६ ।।
स्फाटिकं रक्तपीतञ्च श्यामं स्यात् काञ्चनारुणम् ।
एतान्युक्तानि वर्णानि सामान्याङ्गं प्रकीर्तितम् ।। ५७ ।।
चतुर्भुजं त्रिनेत्रं च जटामुकुटमण्डितम् ।
सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम् ।। ५८ ।।
त्रिशूलमभयं सव्ये कपालं वरमन्यके ।
हारकेयूरसंयुक्तं कटकैः कुण्डलैर्युतम् ।। ५९ ।।
हृदादिवर्णपर्यन्तं स्वरूपं सौम्यमुच्यते ।
शेषा रौद्रा इति ज्ञेयाः सर्वेषां रूपमुच्यते ।। ६० ।।
शिवाङ्गैस्तु यजेद् देवं स्थापनादीनि सर्वशः ।
भूताङ्गेषु च वै वत्स पादादिभूतशोधनम् ।। ६१ ।।
अणो नामानि संयोज्य भूताङ्गेषु समाचरेत् ।
कूटाङ्गैश्चैव विद्याङ्गैः प्रायश्चित्तं तु कारयेत् ।। ६२ ।।

शक्तीनां स्थापने काले शक्त्यङ्गैस्तु समाचरेत् ।
अन्येषां सर्वदेवानां सामान्याङ्गैस्तु योजयेत् ॥ ६३ ॥
एवं षडङ्गमाख्यातं विशेषमथुनोच्यते ।
केवलं ज्ञानजं चैव योगजं भूतजं तथा ॥ ६४ ॥
कामदञ्च क्रमेणैव हृदयं पञ्चधा भवेत् ।
शिवाङ्गं हृदयं यत्तु केवलं समुदाहृतम् ॥ ६५ ॥
स्थानं यानसमायुक्तमादिवर्णान्तसंयुतम् ।
ज्ञानात्महृदयं बिन्दुः समासात् परिकीर्तितम् ॥ ६६ ॥
भूतान्तमनिलोपेतं तत्त्वान्तं स्वरसंयुतम् ।
शिवशक्तिसमायुक्तं योगजं हृदयं विदुः ॥ ६७ ॥
पञ्चमं पार्थिवोपेतं द्वितीयस्वरसंयुतम् ।
बिन्दुनादसमायुक्तं भूतजं हृदयं विदुः ॥ ६८ ॥
तत्त्वान्तमनिलान्तं च दशान्तान्तकलान्वितम् ।
बिन्दुनादसमायुक्तं हृदयं सर्वकामदम् ॥ ६९ ॥
हृदयाय नमोऽन्तं तु सर्वेषां सह योजयेत् ।
ईशानं प्रथमं विद्याच्छुक्लवर्णमुदाहृतम् ॥ ७० ॥
ईश्वरं ज्ञानहृदयं तप्तकाञ्चनसन्निभम् ।
योगजं ब्रह्मरूपं स्यात् पीतवर्णं तु निर्दिशेत् ॥ ७१ ॥
भूतजं चैश्वरं रूपं रक्तवर्णमुदाहृतम् ।
सादाख्यं कामदं विद्याच्छुद्धस्फाटिकसन्निभम् ॥ ७२ ॥
यजनं केवलेनैव स्थापनं ज्ञानजेन तु ।
प्रोक्षणं योगजेनैव दीक्षाकर्म तु भूतजम् ॥ ७३ ॥
सर्वकर्म विशेषेण कामदेनैव कारयेत् ।
एवं हृदयमाख्यातमस्त्रभेदमथोच्यते ॥ ७४ ॥
शिवास्त्रं क्षुरिकास्त्रं च तथा पाशुपतास्त्रकम् ।
व्योमास्त्रं चैव घोरास्त्रमस्त्रं पञ्चविधं भवेत् ॥ ७५ ॥

षडक्षरं शिवास्त्रं स्यात् क्षुरिका त्वष्टवर्णकम् ।
पाशुपतं तु पञ्चार्णं व्योमास्त्रं तु दशार्णकम् ॥ ७६ ॥
चत्वारिंशदघोरास्त्रमेवं पञ्चास्त्रमुच्यते ।
सर्वकर्मार्हकं विद्यात् पूजकाः सर्वकर्मसु ॥ ७७ ॥
शिवाङ्गादिषडङ्गानि कीर्तितानि षडानन ।
अङ्गभेदो मयाख्यातो मन्त्रजातमथ शृणु ॥ ७८ ॥

इति श्रीवातुले शुद्धाख्यतन्त्रे अङ्गभेदो नाम
अष्टमः पटलः समाप्तः ॥

अथ

नवमः पटलः

अथातः संप्रवक्ष्यामि मन्त्रजातमथ शृणु ।
यस्मान्मन्त्राश्च जायन्ते मन्त्रजातमिति स्मृतम् ॥ १ ॥
तस्मान्मन्त्रमयं लिङ्गं वक्ष्ये संक्षेपतः शृणु ।
सर्वलोकहितार्थाय सर्वप्राणिहिताय च ॥ २ ॥
सर्वमन्त्रप्रसिद्धयर्थं भुक्तिमुक्त्यर्थमुच्यते ।
शालिपिष्टाक्तसूत्रेण सूत्रपातमथाचरेत् ॥ ३ ॥
गोमयालेपिते क्षेत्रे निम्नोन्नतविवर्जिते ।
प्राक्सूत्राणि सप्तदश तथैवोद्गतानि च ॥ ४ ॥
पङ्क्तयः षोडश स्युस्ताः प्रागुत्तरमुखास्तथा ।
षट्पञ्चाशत्समाधिक्यकोष्ठानि द्विशतानि च ॥ ५ ॥
पश्चिमादिन्द्रपर्यन्तं लिङ्गार्थं वीथिकां त्यजेत् ।
पश्चात् चत्वारि चत्वारि वीथ्यः कोष्ठानि मध्यमे ॥ ६ ॥
संरक्ष्य पार्श्वद्वितये षट् षट् कोष्ठानि लोपयेत् ।
तदूर्ध्वपङ्क्ति संरक्ष्य तदूर्ध्वं द्वादशं क्षिपेत् ॥ ७ ॥
पार्श्वयोरुभयोस्तस्याः द्वे द्वे कोष्ठे च लोपयेत् ।
तदूर्ध्वं दशकोष्ठानि रक्षेत् पार्श्वत्रयं त्यजेत् ॥ ८ ॥
ततः षट्कोष्ठकं रक्षेत् पार्श्वयोः पञ्च पञ्च च ।
लोपयेच्च तदूर्ध्वं तु रक्षेच्चत्वारि पार्श्वयोः ॥ ९ ॥
षट् षट् कोष्ठानि संत्यज्य तदूर्ध्वं तद्वदाचरेत् ।
ततः षट्कोष्ठकं रक्षेत् पार्श्वयोः पञ्च लोपयेत् ॥ १० ॥
तदूर्ध्वं दश संरक्षेत् पार्श्वयोस्त्रित्रि लोपयेत् ।
तदूर्ध्वं द्वादशं रक्षेद् द्वे द्वे पार्श्वे च लोपयेत ॥ ११ ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रजातमथ शृणु।
यस्मान्मन्त्रश्च जायते मन्त्रजातमिति स्मृतम्॥ १ ॥
तस्मान्मन्त्रमयं लिङ्गं वक्ष्ये संक्षेपतः शृणु।
सर्वलोकहितार्थाय सर्वप्राणिहिताय च॥ २ ॥
सर्वमन्त्रप्रसिद्ध्यर्थं भुक्तिमुक्त्यर्थमुच्यते।
शालिपिस्टाक्तसूत्रेण सूत्रापातमथचरेत॥ ३ ॥
गोमपालेपिते क्षेत्रे निम्नोन्नतविवर्जिते।
प्राक्सूत्राणि सप्तदश तथैवोद्गतानि च॥ ४ ॥
पङ्क्तयः षोडश स्युस्ताः प्रागुत्तरमुखास्तथा।
षट्पञ्चाशत् समाधिम्यकोष्ठानि द्विशतानि च॥ ५ ।
पश्चिमादिन्द्रपर्यन्तं लिङ्गार्थं विचिकां त्यजेत्।
पश्चात् चत्वारि चत्वारि वीक्ष्यः कोष्ठानि मध्यमे॥ ६ ॥
संरक्ष्य पार्श्वद्वितये षट् षट् कोष्ठानि लोपयेत्।
तदूर्ध्वपङ्क्ति संरक्ष्य तदूर्ध्वं द्वादश क्षिपेत्॥ ७ ॥
पार्श्वयोरूभयोस्तस्याः द्वे द्वे कोष्ठे च लोपयेत्।
तदूर्ध्वं दशकोष्ठानि रक्षेत् पार्श्वत्रयं त्यजेत्॥ ८ ॥
ततः षट्कोष्ठकं रक्षेत् पार्श्वयोः पञ्च पञ्च च।
लोपयेच्च तदूर्ध्वं तु रक्षेच्चत्वारि पार्श्वयोः॥ ९ ॥
षट् षट् कोष्ठानि संत्यज्य तदूर्ध्वं तद्वदाचरेत्।
ततः षट्कोष्ठकं रक्षेत् पार्श्वयोः पञ्च लोपयेत्॥ १० ॥
तदूर्ध्वं दश संरक्षेत् पार्श्वयोस्त्रित्रि लोपयेत्।
तदूर्ध्वं द्वादशं रक्षेद् द्वे द्वे पार्श्वं च लोपयेत्॥ ११ ॥

तदूर्ध्वे पङ्क्तिं संरक्ष्य ततो लिङ्गं द्विपङ्क्तितः।
पङ्क्त्योश्चत्वारि चत्वारि कोष्ठान्यूर्ध्वे च रक्षयेत्॥ १२॥

षट् षट् कोष्ठानि पङ्क्त्योश्च पार्श्वयोरुभयोस्त्यजेत्।
एवमङ्गं समासाद्य ब्रह्मविष्ण्वीशपीठकम्॥ १३॥
पट्टिकाञ्जनकण्ठाब्जपट्टिकाज्यप्रघाटिकाः।
षडङ्गानि च पीठस्य क्रमात् प्रोक्तानि षण्मुख॥ १४॥
मन्त्रन्यासक्रमं लिङ्गे शृणु वत्स समासतः।
अङ्गभेदे षडङ्गानि प्रोक्तमन्त्राणि विन्यसेत्॥ १५॥

हृदयं पट्टिकायां तु शिरःकञ्जे शिखां गले।
कवचं कमले नेत्रं पट्यामस्त्रं च घाटिके॥ १६॥
प्रोक्तः षडङ्गविन्यासो वक्ष्ये चाधारषट्क्रमात्।
कञ्जश्चाधः आधारं वादिसान्तं चतुर्दले॥ १७॥
स्वाधिष्ठाने च षट्पत्रे वादिलान्तं ततो न्यसेत्।
ततो मणौ दशदले डादिफान्तं न्यसेत्ततः॥ १८॥

हृदये द्वादशदले कादिठान्तं न्यसेत्ततः।
पट्यां कण्ठे षोडशके आदिवर्गं न्यसेत्ततः॥ १९॥
आज्ञायां द्विदले चोर्ध्वे लक्षयुग्मं न्यसेत्ततः।
एतानि शिवचक्राणि शक्तिचक्राण्यथो न्यसेत्॥ २०॥
आधारादिगलान्तं च वर्णानां पूर्ववद् न्यसेत्।
आज्ञायां तु विशेषोऽस्ति शक्तिपक्षे हलं न्यसेत्॥ २१॥
वर्णाधिदेवतास्तत्र पूर्ववत् परिकल्पयेत्।
एवं षट्चक्रमाख्यातं मूर्तिमन्त्रं न्यसेत्ततः॥ २२॥

नादं लिङ्गे च विन्यस्य बिन्दुमाज्यप्रघाटिके।
पट्यादिकञ्जपर्यन्तं मकारं विन्यसेत् ततः॥ २३॥
वृत्ते उकारं विन्यस्य अकारं कमलपट्टके।
सूक्ष्मं पञ्चाक्षरं प्रोक्तं स्थूलपञ्चाक्षरं शृणु॥ २४॥

नकारादियकारान्तं पञ्चार्णं तत्र विन्यसेत्।
पञ्चाक्षरमिदं प्रोक्तं षडक्षरमथोच्यते ॥ २५ ॥
तारं लिङ्गे प्रविन्यस्य पट्टिकायां नकारकम्।
मकारमूर्ध्वकञ्जे तु शिकारं वृत्तमध्यके ॥ २६ ॥
अधःकञ्जे च वाकारमधःपट्यां यकारकम्।
एवं षडक्षरं प्रोक्तं षडध्वन्यास उच्यते ॥ २७ ॥
जगत्यां भुवनाध्वानं पदाध्वानञ्च पङ्कजे।
वर्णाध्वानञ्च वृते तु कलाध्वानञ्च पङ्कजे ॥ २८ ॥
तत्त्वाध्वानं पट्टिकायां मन्त्राध्वानं प्रघाटिके।
एवं षडध्वकं न्यस्य सर्वमन्त्रात्मकं शिवम् ॥ २९ ॥
सप्तकोटिमहामन्त्रैर्मन्त्रितं लिङ्गमुच्यते।
ज्ञात्वा समर्चयेन्मन्त्री अन्यथा निष्फलं भवेत् ॥ ३० ॥
कामिकादिषु तन्त्रेषु अष्टाविंशतिभेदतः।
प्रोक्तानि मन्त्रजातानि तत्सर्वं विन्यसेद् बुधः ॥ ३१ ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मन्त्रजातमिदं मतम्।
अतिबालं सबालञ्च कौमारञ्च त्रिकोणकम् ॥ ३२ ॥
यौवनं चैव जातीनां प्रकृतिर्विकृतिस्तु वा।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो जातिः प्रकीर्तिताः ॥ ३३ ॥
स्त्रीपुंनपुंसकं चैव शयनस्थानमासनम्।
शुद्धं मिश्रं तु संकीर्णं मन्त्ररूपमथ श्रृणु ॥ ३४ ॥
वाग्भवं मन्त्रमित्याहुरोष्ठान्तं कण्ठ एव च।
पारुष्यरूपमेवं तु वासवाहनमुच्यते ॥ ३५ ॥
शुद्धं चाकारसंयुक्तमतिबालं प्रकीर्तितम्।
अष्ठबीजसमायुक्तं सबालं चेति कीर्तितम् ॥ ३६ ॥

पञ्चस्वरसमायुक्तं कौमारं तु प्रकीर्तितम् ।
यौवनं चैव सर्वेषां मन्त्रजातं प्रकीर्तितम् ।। ३७ ।।
शिवाक्षरं ब्राह्मणानां पञ्चाक्षरं नृपस्य तु ।
षडक्षरसमायुक्तं वैश्यमुद्रं प्रकीर्तितम् ।। ३८ ।।
एवं क्रमेण गणितं चतुर्थ्यन्तं प्रकीर्तितम् ।
स्वाहाकारो भवेन्नारी नमोऽन्तं पुरुषाकृतिः ।। ३९ ।।
फट्कारं ज वषट्कारं नपुंसकमिति स्मृतम् ।
विप्रं स्वाहान्तकं प्रोक्तं नृपवैश्यादि संयुत्तम् ।। ४० ।।
इन्द्रादिशयनस्थानं मन्त्रजातं प्रकीर्तितम् ।
शुद्धमेकाक्षरं प्रोक्तं वेदाक्षरं तु मिश्रकम् ।। ४१ ।।
संकीर्णो बहुधा मन्त्रस्त्रिविधो मन्त्र उच्यते ।
मन्त्रादौ शीर्षकं प्रोक्तं मन्त्रोर्ध्वं वदनं मनम् ।। ४१ ।।
मन्त्र पार्श्वं तु बाहू च तस्याप्यधर संयुत्तम् ।
पार्श्वं तु चक्षुः श्रोतश्च चक्षुर्मध्ये च नासिका ।। ४३ ।।
तस्याउर्ध्वं ललाटश्च विन्दु मस्तकमुच्यते ।
नादौ जिह्वा समाख्यातः शब्दः शब्द इति स्मृत ।। ४४ ।।
ओष्ठ शब्देन भिन्नः स्यादास्यान्तर समान्वितः ।
प्रणवान्त्ते समायुक्तं मन्त्रान्ते च प्रतिष्ठितम् ।। ४५ ।।
मन्त्ररुपमिदं प्रोक्तं मन्त्रवासस्तथोच्यते ।
मन्त्राणां प्रकृतिर्शसो वाहनं त्रिकृतिस्तथा ।। ४६ ।।
प्रकृतिर्वर्णभावश्च वर्णानां वास्यजिह्वया ।
आस्ये तु जिह्वावासश्य आस्यानां बद्धिवासनम् ।। ४७ ।।
बद्धचर्ण हृदये वासं हृदयं पिण्डवासनम् ।
विण्डार्णवासो नाड्यां तु नाडीनां वायवासनम् ।। ४८ ।।
वायुवासश्च शक्तिनां शक्तयावासश्च वै शिवः ।
शिववासश्च सर्वेषां मन्त्रवासं प्रकीर्तितम् ।। ४९ ।।
मन्त्रवासोम या प्रोक्तो मन्त्रवाहनमुच्यते ।
लिङ्गं च प्रतिमाकुम्भे वास्तौ वऽनौ च मूलके ।। ५० ।।
अन्ये कुम्भे च वास्तौ च युक्तं मन्त्रस्य वाहनम् ।
एवं नवदशं प्रोक्तं मन्त्रजातस्य लक्षणम् ।। ५१ ।।
मन्त्रजातमिदं प्रोक्तं मन्त्रकीलकमथ शृणु ।

इति वातुले शुद्धाख्यतन्त्रे मन्त्रजातं
नाम नवमः पटलः समाप्तः ।।

अथ

दशमः पटलः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रकीलमथ शृणु।
अकीलं कीलमियुक्तं कीलमन्त्रं विसर्जयेत् ॥ १ ॥
नेत्रे ललाटं वक्षश्च श्रोत्रे चास्यञ्च नासिके।
पादौ बाहू च देहश्च मन्त्र उच्चार्यते बुधैः ॥ २ ॥
अथ दीर्घायते वृत्तमथ दीर्घाय वृत्तकम्।
अर्धचन्द्रसमाकारं नादमायान्ति नादवत् ॥ ३ ॥
गुरौ लिङ्गेऽक्षमालायां मन्त्रे भस्मनि पञ्चसु।
एतासु शिवमुद्रासु शिवबद्भक्तिमाचरेत् ॥ ४ ॥
आत्मीयान् विविधान् भोगान् स्त्रीपुत्रप्रमुखानपि।
स्वात्मानं च विशेषेण तेषां च वशमानयेत् ॥ ५ ॥
यो भेदं भक्तिमान् भक्तस्तेषु मोहात् करोति च।
शिवद्रोहीति विज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ ६ ॥
शैवं चतुर्विधं ज्ञेयं समासाच्छृणु षण्मुख।
सामान्यं मिश्रकं चैव शुद्धं वीरं यथाक्रमम् ॥ ७ ॥
तत्रादौ संप्रवक्ष्यामि शैवसामान्यलक्षणम्।
शिवलिङ्गं यदा पश्येत्तदा कुर्यात् समर्चनम् ॥ ८ ॥
प्रदक्षिणं वा प्रणतिं दर्शनं वात्र कारयेत्।
भस्मधारणमात्रेण शुद्धो भवति सर्वदा ॥ ९ ॥
शिवकीर्तौ तथालापे प्रीतिमान् शिवभक्तके।
एतेषां नियतिर्नास्ति यथालब्धं समाचरेत् ॥ १० ॥

सामान्यलक्षणं प्रोक्तं वक्ष्ये मिश्रस्य लक्षणम् ।
शैवञ्च वैष्णवं शाक्तं कौमारं गाणपत्यकम् ॥ ११ ॥
सौरं चाखिलदैवत्यं पूजनञ्च समाचरेत् ।
एतेषूक्तेषु सर्वेषु तत्तन्मन्त्रेषु मिश्रितान् ॥ १२ ॥
समभक्तिसमायुक्तः सर्वान् लिङ्गेन भावयेत् ।
मिश्रशैवमिति प्रोक्तं शुद्धशैवमथ श्रृणु ॥ १३ ॥
शुद्धत्वं शिवमुद्दिष्टं शिवाज्जातं तु शैवकम् ।
शुद्धशैवसमायोगाच्छुद्धशैवमिति स्मृतम् ॥ १४ ॥
शिवेनोत्पद्यते शैवस्तस्माज्जातः शिवद्विजः ।
कामिकादिषु शास्त्रेषु अष्टाविंशतिषु क्रमात् ॥ १५ ॥
वेदशास्त्रादिसर्वेषु कृताभ्यासः शिवव्रती ।
कर्षणादिप्रतिष्ठान्तं प्रतिष्ठाद्युत्सवान्तकम् ॥ १६ ॥
उत्सवादिप्रायश्चित्तान्तं ज्ञात्वा सर्वं समाचरेत् ।
मन्त्रयन्त्रक्रियामुद्रान्यासावाहनकादिभिः ॥ १७ ॥
उपचारैर्बहुविधैर्लिङ्गं सिंहासने यजेत् ।
आत्मार्थं च परार्थं च पूजा द्विविधमुच्यते ॥ १८ ॥
दत्ते च गुरुणा लिङ्गे स्थण्डिले स्वयमात्मनि ।
आत्मार्थमिदमाख्यातं परार्थं तु ततः श्रृणु ॥ १९ ॥
ग्रामादौ स्थापिते यद्वा देवादिनिर्मितेऽथवा ।
परार्थमिति विज्ञेयं सर्वप्राणिहितावहम् ॥ २० ॥
शिवद्विजेन कर्तव्या द्विधा पूजेति चोदिता ।
अन्येषां स्वार्थयजनं न कुर्यात्तु परार्थकम् ॥ २१ ॥
मोहाल्लोभाच्च कुर्वीते राज्ञो राष्ट्रस्य दुस्थितिः ।
शिवावरणदेवांश्च नित्यं संपूजयेद् गृहे ॥ २२ ॥
पृथक् स्थानस्थिताः सर्वा नार्चयेदन्यदेवताः ।
मन्त्रपिण्डहृदम्भोजे वासमन्त्रस्य भावतः ॥ २३ ॥

आवाहनात् समायुक्ते लिङ्गे पूजादिकं चरेत् ।
मन्त्रलिङ्गं शरीरः स्यात् स एव परमः शिवः ॥ २४ ॥

शुद्धशैवमिति प्रोक्तं वीरशैवं ततः श्रृणु ।
ज्ञानगम्यं रहस्यं च कैवल्यपदकारणम् ॥ २५ ॥

वीरशैवमिति ज्ञेयमेतल्लक्षणमुच्यते ।
एक एवायमेतस्मिन् सर्वस्मिन् जगतीति यः ॥ २६ ॥

विशिष्ट ईर्यते यस्मादीश्वर इत्यभिधीयते ।
शिवेन सह सम्बन्धं शैवमित्यादृतं बुधैः ॥ २७ ॥

उभयोः सम्पुटीभावाद्वीरशैवमिति स्मृतम् ।
शिवायार्पितजीवत्वाद् वीरतन्त्रसमुद्भवात् ॥ २८ ॥

वीरशैवसमायोगाद् वीरशैवमिति स्मृतम् ।
वीरमाहेश्वरं तन्त्रं ज्ञातव्यं त्रिविधं सुत ॥ २९ ॥

सामान्यं च विशेषं च निराभारं क्रमाद्भवेत् ।
तत्रादौ सम्प्रवक्ष्यामि वीरसामान्यलक्षणम् ॥ ३० ॥

हस्तमस्तकसंयोगाद् भूतिपट्टस्य धारणात् ।
शिवदेहीति विज्ञेयः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३१ ॥

गुरुणा दत्तलिङ्गं तु शिवमन्त्रेण धारयेत् ।
मूर्ध्नि कण्ठे भुजे हस्ते हृत्स्थले नाभिमण्डले ॥ ३२ ॥

एतेषामेकदेशे तु धारयेच्छिवलिङ्गकम् ।
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वा समर्चयेत् ॥ ३३ ॥

गुरौ लिङ्गे सदा भक्तिं कारयेद् भसिते व्रती ।
वीरसामान्यमाख्यातं विशेषञ्च ततः श्रृणु ॥ ३४ ॥

शिवकुम्भं समासाद्य स्थण्डिलादिषु पूर्ववत् ।
शिवकुम्भे शिवं पूज्य भक्तानन्नेन तोषयेत् ॥ ३५ ॥

शेषं दीक्षोक्तवत् कृत्वा मलपाशादिमोचनम् ।
गुरुः शिष्यं समालोक्य तत्त्वदेहं विचिन्तयेत् ॥ ३६ ॥

शिवकुम्भस्य तोयेन अभिषिञ्चेच्छिवपाणिना ।
नादबिन्दुकला नीत्वा तत्तत्स्थानेषु विन्यसेत् ।। ३७ ।।
षट्चक्रञ्च षडङ्गञ्च षडध्वानं षडानन ।
तत्तत्स्थानेषु विन्यस्य पञ्चब्रह्म न्यसेत्ततः ।। ३८ ।।
मूलमन्त्रं तूपदिशेत्ततो लिङ्गं प्रदापयेत् ।
शेषाणि सर्वकर्माणि दीक्षाध्वोक्तक्रमाच्चरेत् ।। ३९ ।।
देहप्राणौ समायोज्य प्राणं लिङ्गे प्रकल्पयेत् ।
अविना भावसंयोगात् तस्मादैक्यं प्रकल्पयेत् ।। ४० ।।
अन्यदृष्टिनिपातं तत्तद् द्रव्यं परिवर्जयेत् ।
शुद्धद्रव्यं समासाद्य लिङ्गाङ्गानां प्रसर्पणम् ।। ४१ ।।
इति व्रतसमायुक्तो वीरशैवो विशिष्यते ।
विशेषशैवमाख्यातं निराभारं ततः शृणु ।। ४२ ।।
सर्वसंसारसौख्यानि त्यक्त्वा चित्तं शिवे लयेत् ।
दण्डकौपीनकाषायजटावल्कलधारकः ।। ४३ ।।
मुण्डी वा शिवचिह्नानि धारयेदजिनादिकम् ।
भिक्षाशी नियताहारः सुखसंसारवर्जितः ।। ४४ ।।
निराभारीति विज्ञेयः स एव परमः शिवः ।
वीरमाहेश्वराणां च सामान्यव्रतमुच्यते ।। ४५ ।।
पूर्वोक्तशिवमुद्रासु तद्धारिषु च सर्वतः ।
अर्थतः प्राणतः प्राज्ञो भक्तिं कुर्याद् दृढां सुत ।। ४६ ।।
पापं तेषु न वक्तव्यं स्वयमेव कदाचन ।
कृते परेण चेत्पापे नेक्षेत करणैस्त्रिभिः ।। ४७ ।।
बलवान् रक्षयेत्तत्र दुर्बलश्चेद् व्रजेत्ततः ।
करणैस्तु विहीनश्चेद् बुद्धिं तत्र न निक्षिपेत् ।। ४८ ।।
स्वीकरोति यदा लिङ्गं गुरुणा दीक्षमाणना ।
तदा प्रभृति लिङ्गैक्यमविनाभावयोगतः ।। ४९ ।।

देहं प्राणेन संस्थाप्य प्राणं लिङ्गे च निक्षिपेत् ।
प्राणेन निक्षिपेल्लिङ्गं पृथग्भावं न कारयेत् ॥ ५० ॥
वीरशैवक्रमः प्रोक्तः प्रायश्चित्तविवर्जितः ।
प्राणलिङ्गे व्रते लुप्ते हस्तखड्गादवञ्चयन् ॥ ५१ ॥
मुखं पङ्कजवच्छिन्द्याद्वीरभृत्यस्य लक्षणम् ।
यो वा चोत्पाटयेज्जिह्वां शिवनिन्दारतस्य तु ॥ ५२ ॥
त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य रुद्रलोकं स गच्छति ।
शुद्धशैवो विशेषेण मन्त्रयन्त्रप्रवारणात् ॥ ५३ ॥
शुद्धो भवति लोकेषु प्रायश्चित्तविधानतः ।
स्वेष्टलिङ्गे परिभ्रष्टे नष्टे दग्धे हृतेऽपि वा ॥ ५४ ॥
नीते वा मूषिकाद्यैश्च काककौलेयवानरैः ।
जप्त्वा लक्षमघोरस्य विधिना लिङ्गकान्तरम् ॥ ५५ ॥
प्रतिष्ठाप्य नयेच्छुद्धिं पीठिकायां तथैव च ।
व्रतस्य च क्रियालोपे नियमस्य विलोपने ॥ ५६ ॥
गायत्र्यष्टशतेनैव विशुद्धिमधिगच्छति ।
सामान्यं मिश्रकं चैव शुद्धं वीरं चतुर्विधम् ॥ ५७ ॥
तत्सर्वं हि समासेन तव प्रोक्तं षडानन ।
तत्त्वादिकीलकान्तानां पटलानां दश क्रमात् ॥ ५८ ॥
भेदाः शुद्धाख्यतन्त्रस्य कथितास्तव सुव्रत ॥

इति श्रीवातुले शुद्धाख्यतन्त्रे कीलं नाम
दशमः पटलः समाप्तः ॥

॥ समाप्तश्चायं ग्रन्थः ॥